श्री गुरवे नमः

*

श्रीगुरुवाक्य

*

(श्री श्रीगुरुगीता)

प्रकाशक
पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद
दतिया (म.प्र.)

Rs 10

श्री गुरवे नमः

*

श्रीगुरुवाक्य

*

(श्री श्रीगुरुगीता)

प्रकाशक
पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद
दतिया (म.प्र.)

प्रकाशक :

पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद
दतिया (म. प्र.)

द्वितीय संस्करण
वैशाख शुक्ल, संवत् २०६४
सन् २००७

१००० प्रतियाँ

मुद्रक :

शिवशक्ति प्रेस प्रा. लि.
बैद्यनाथ भवन, ग्रेट नाग रोड,
नागपुर-४४० ००९

श्रीगुरुवाक्य

(श्री श्रीगुरुगीता)

ऋषय ऊचुः –

गुह्याद् गुह्यतरा विद्या गुरुगीता विशेषतः।
त्वत्प्रसादादि श्रोतव्या तत्सर्वं ब्रूहि मे सूत।।१।।

अन्वय – सूत (हे सूत!) विद्या (ब्रह्मविद्या) (गुह्यात्) (गोपनीय से) गुह्यतरा (अधिक गोपनीय) विशेषतः (विशेषकर) गुरुगीता (गुरुगीता) त्वत् (आपके) प्रसादात् (प्रसाद से) हि (ही) श्रोतव्या (जानी जा सकती है) तत् (वह) सर्वम् (सब) से हमें ब्रूहि (कहें)।।१।।

अर्थ – हे सूत! ब्रह्मविद्या गोपनीय से भी अधिक गोपनीया है, विशेषकर गुरुगीता – आपके प्रसाद से ही जानी जा सकती है; वह सब हमें कहें।।१।।

(अन्यान्य विद्याओं द्वारा मनुष्य संसार में नश्वर सुख-शान्ति लाभ कर सकता है। एक मात्र ब्रह्मविद्या ही मनुष्य को परमानन्दमय परमपद दान करती है – जिस आनन्द लाभ से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है एवं जन्म, मृत्यु से निवृत्त हो जाता है। इस गुरुगीता के पाठ करने से गुरुभक्ति लाभ करके गुरुनाम की महिमा और गुरु का स्वरूप जाने जा सकते है और भव-बन्धन से मुक्त होता है।

सूत उवाच –

कैलासशिखरे रम्ये भक्तिसाधनतत्परा।
प्रणम्य पार्वती भक्त्या शंकरं परिपृच्छति।।२।।

अन्वय – रम्ये (रमणीय) कैलासशिखरे (कैलास के शिखर पर) भक्तिसाधन-तत्परा (भक्तिसाधन में तत्पर) पार्वती (पार्वती ने) भक्त्या (भक्ति के साथ) शंकरम् (शंकर को) प्रणम्य (प्रणाम करके) परिपृच्छति (जिज्ञासा की)।।२।।

अर्थ – रमणीय कैलाश शिखर पर भक्तिसाधन में तत्पर पार्वती देवी ने भक्ति के साथ शंकर को प्रणाम करके जिज्ञासा की।।२।।

श्री पार्वत्युवाच –

नमो नमो देवदेव परात्पर जगद्गुरो।
सदाशिव महादेव गुरुगीतां प्रदेहि मे।।३।।

अन्वय – देवदेव (देवों के देव) परात्पर (श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर) जगद्गुरो (हे जगद्गरु!) सदाशिव (सदाशिव) महादेव (महादेव) (आपको) नमः (प्रणाम) नमः (प्रणाम) मे (मुझको) गुरुगीताम् (गुरुगीता) प्रदेहि (कहें)।।३।।

अर्थ – पार्वती बोली – हे देवों के देव! श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर, जगद्गुरु, सदाशिव, महादेव सच्चिदानन्दघन, परमात्मा, आपको पुनः पुनः प्रणाम। आप मुझे गुरुगीता कहें।।३।।

केन मार्गेण भो स्वामिन् देवी ब्रह्ममयो भवेत्।
त्वं कृपां कुरू मे ब्रह्मन् नमामि चरणौ तव।।४।।

अन्वय – भो स्वामिन् (हे स्वामी!) ब्रह्मन (हे ब्रह्म) केन मार्गेण (किस उपाय से) देही (जीव) ब्रह्ममयः (ब्रह्ममय) भवेत् (होता है) त्वम् (आप) मे (मुझे) कृपां कुरू (कृपया बोलें) तव (आपका) चरणम् (चरण में) नमामि (प्रणाम करती हूँ)॥४॥

अर्थ – हे स्वामी! हे ब्रह्म! किस उपाय से देहात्माभिमानी जीव ब्रह्ममय होता है, आप कृपा करके मुझे कहें। आपके चरणों में प्रणाम करती हूं॥४॥

श्री शंकर उवाच –

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाश्यन्ते महात्मभिः।
मम रूपासि देवि त्वं त्वप्रीत्यर्थं वदाम्यहम्॥५॥

अन्वय – यस्य (जिसकी) देवे (देवता में) पराभक्तिः (परम भक्ति है) यथा (जिस प्रकार) देवे (इष्ट देव में) तथा (उसी प्रकार) गुरौ (गुरु में) तस्य (उसका) हि (निकट) महात्मभिः (महात्मागण) एते (ये सब) कथिता (कहे गए) अर्थाः (विषय) प्रकाश्यन्ते (प्रकाश करते हैं)। देवि (हे देवि) त्वम् (तुम) मम (मेरी) रूपा (स्वरूपा) असि (हो) त्वम् (तुम्हारी) प्रीत्यर्थम् (प्रसन्नता के लिए) अहम् (मैं) वदामि (कहता हूं)॥५॥

अर्थ – श्री शंकर बोले – देवता में जिनकी अचल भक्ति है और जिस प्रकार इष्टदेवता में भक्ति है, उसी प्रकार गुरु में भी भक्ति है, उन्हीं के निकट महात्मागण आपके कथित विषय का प्रकाश करते हैं। देवि तुम मेरा ही स्वरूप हो, इस कारण, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं कहता हूँ॥५॥

लोकोपकारकः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तत्श्रुणुष्व वदाम्यहम्।
किंचिद् गुरुं विना नान्यत् सत्यं सत्यं वरानने।।६।।

अन्वय – पुरा (पहले) लोकोपकारकः (लोक का उपकारक) प्रश्नः (यह प्रश्न) केन (किसी के द्वारा) अपि (भी) न कृतः (नहीं किया गया) वरानने (हे सुवदने) अहम् (मैं) वदामि (बोलता हूँ) त्वम् (तुम) श्रुणुष्व (श्रवण करो) गुरु बिना (गुरु बिना) अन्यत् (अन्य) किंचित् (कुछ भी) त्रिषु (तीनों) लोकेषु (लोकों में) दुर्लभम् (दुर्लभ) न (नहीं है) सत्यं-सत्यम् (सच सच कहता हूँ)।।६।।

अर्थ – पहले इस प्रकार का लोकोपकारक प्रश्न किसी ने नहीं किया हे उत्तमप्रश्नकारिणी सुवदने! मैं कहता हूँ – तुम सुनो। गुरु के बिना इस त्रिभुवन में और कुछ दुर्लभ नहीं है – मैं सत्य सत्य कहता हूँ।।६।।

(गुरुलाभ करने से जगत् भिन्न आकार धारण करता है, सब आनन्दमय हो जाता है। यह सच्चिदानन्दघन, मन बुद्धि का अगोचर परमात्मा ही गुरुरूप धारण करके पकड़ने देते हैं, इस कारण गुरु ही सबसे दुर्लभ हैं; उनको लाभ करने पर ही चिरशान्ति अनिवार्यतः मिल जाती है)।।६।।

वेदशास्त्रपुराणानि इतिहासादिकानि च।
यन्त्रमन्त्रादि विद्यानां मृत्युरूच्चाटनादिकम्।।७।।
शैवशाक्तागमादीनि अन्यद् बहुमतानि च।
अपभ्रंशानि शास्त्राणि जीवानां भ्रान्तचेतसाम्।।८।।

अन्वय – वेदशास्त्र (वेदशास्त्र) पुराणानि (सब पुराण) च (और) इतिहासादिकानि (इतिहास इत्यादि) यन्त्रमन्त्रादि विद्यानाम् (यन्त्र मन्त्र आदि विद्या) मृत्युच्चाटनादिकम् (मारणउच्चाटन आदि) शैव शाक्तागमादीनि (शैव, शाक्त, आगम समूह) च (और) अन्यद्बहुमतानि (अन्यबहुत से मत) शास्त्राणि (शास्त्र) भ्रान्तचेतसाम् (भ्रान्तचित) जीवानाम् (जीवों का) अपभ्रंशानि (अपभ्रंशकर हैं)॥७-८॥

अर्थ – वेदशास्त्र, पुराण इत्यादि यन्त्र-मन्त्र आदि विद्या, मारण उच्चाटन आदि अभिचारकर्म, शैव शाक्तगण का आगम समूह और अन्य बहुमत निखिल शास्त्र गुरुलाभ के बिना भ्रान्तचित जीव के पतन के कारण होते हैं॥७-८॥

वेदशास्त्रपुराणानि कृत्वा वै गुरुकाम्यया।
स्वयं लोकगुरुः साक्षाज्जायते वेदतत्ववित्॥९॥

अन्वय – गुरुकाम्यया (गुरु की इच्छा से) वेदशास्त्रपुराणानि (वेदशास्त्रपुराण आदि) वैकृत्वा (प्रणयन करके) स्वयं (स्वयं) साक्षात् (साक्षात्) वेदतत्ववित् (वेदों का तत्त्व जानने वाले) लोकगुरुः (लोकगुरु) जायते (होते हैं)॥९॥

अर्थ – श्री गुरुदेव की इच्छा से वेद पुराण आदि शास्त्र के अनुकूल शास्त्रादि प्रणयन और प्रकाश करके स्वयं साक्षात् वेदतत्त्ववेत्ता लोकगुरु हो जाते हैं॥९॥

(गुरुदेव की इच्छा ही सर्वत्र बलवती है। वे निरक्षर अज्ञानी को भी ज्ञान दान करके जगत् के कल्याण में नियुक्त कर सकते हैं)॥९॥

सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात्।
सर्वतीर्थावगाहानां फलं प्राप्नोति निश्चितम्।।१०।।

अन्वय – श्रीगुरोः (श्रीगुरुदेव की) पाद सेवनात् (चरम सेवा से) सर्वपापविशुद्धात्मा (सर्वपापरहित चित्त) सन् (होकर) निश्चितम् (निश्चय) सर्वतीर्थावगाहानाम् (सब तीर्थों में स्नान का) फलम् (फल) प्राप्नोति (प्राप्त होता है)।।१०।।

अर्थ – मनुष्य श्री गुरुदेव की चरण सेवा से ही सर्वपाप-रहित-चित्त होकर निश्चय ही सब तीर्थों का स्नान फल लाभ करता है।।१०।।

गुरुपादोदकं सम्यक् संसारार्णव-तारणम्।
अज्ञान-मूलहरणं जन्म-कर्म-निवारणम्।
ज्ञान, वैराग्य-सिद्ध्यर्थं गुरुपादोदकं पिबेत्।।११।।

अन्वय – गुरुपादोकम् (गुरुचरणोदक्) सम्यक् (अच्छी तरह) संसारार्णव-तारणम् (संसार-समुद्र तारण) अज्ञानमूलहरणम् (अज्ञान के मूल का नाश) जन्म-कर्म निवारणम् (जन्म-कर्म का निवारण करता हैं) ज्ञान-वैराग्य-सिद्ध्यर्थम् (ज्ञान और वैराग्य की सिद्धि के लिए) गुरुपादोदकम् (गुरु का चरणोदक) पिबेत (पीना चाहिए)।।११।।

अर्थ – श्री गुरुदेव का चरणोदक संसार समुद्र से सम्यक् रूप से तारत्राण करता है, अज्ञान को समूल नाश करता है और जन्म कर्म का निवारण करता है। ज्ञान और वैराग्य की सिद्धि के लिये गुरु का चरणोदक पान करना चाहिये।

(गुरु चरणोदक पान करने से ज्ञान और वैराग्य सिद्ध होते हैं। ज्ञान द्वारा बहुदर्शनरूप अज्ञान दूर हो जाता है। ऐहिक,

पारलौकिक भोग समूह में वैराग्य उत्पन्न होता है। साक्षात् भगवान श्री गुरुदेव का चरणोदक पान करने से स्वत: ही ज्ञान और वैराग्य लाभ होता है।।११।।

गुरुपादोदकं पेयं गुरोरुच्छिष्टभोजनम्।
गुरुमूर्तेः सदाध्यानं गुरुस्तोत्रं सदाजपेत्।।१२।।

अन्वय – गुरुपादोदकम् (गुरु का चरणोदक) सदा (सदा) पेयम् (पान करना चाहिए) गुरो: (गुरु का) उच्छिष्ट भोजनम् (उच्छिष्ट भोजन) गुरुमूर्ते (गुरुमूर्ति का) सदा (सदा) ध्यानम् (ध्यान) करना चाहिए। गुरुस्तोत्रम् (गुरु का स्तवन) जपेत् (जपना चाहिए)।।१२।।

अर्थ – शिष्य को आमरण गुरुचरणोदक सदा पान करना चाहिए, गुरु का उच्छिष्ट भोजन करना चाहिए, गुरुमूर्ति का सर्वदा ध्यान करना चाहिए और गुरुस्तोत्र का सर्वदा पाठ करना चाहिए।।१२।।

(प्रात:, मध्यान्ह और सायं इन तीन काल के अर्थ में "सदा" का प्रयोग हुआ है। सब प्रकार के अधिकारी का ही यह कर्तव्य है। ज्ञान लाभ करने पर भी चरणोदक आदि का पान छोड़ना नहीं चाहिए।)

यावदायुस्तावद् वन्द्यो वेदान्तो गुरुरीश्वरः।
मनसा कर्मणा वाचा श्रुतेरेवषु निश्चयः।।

– श्री शंकराचार्य-सारतत्वोपदेश

जितने दिन जीवित रहे, वेदान्त, गुरु और ईश्वर की कर्म, मन और वाक्य द्वारा वन्दना करे – यह श्रुति का सिद्धान्त है।।१२।।

काशीक्षेत्रं निवासोऽस्य जान्हवी चरणोदकम्।
गुरुर्विश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्म निश्चितम्।।१३।।

अन्वय – अस्य (इसका) निवासः (वास स्थान) काशी क्षेत्रम् (काशी क्षेत्र) जान्हवी (गंगा) चरणोदकम् (चरणोदक) गुरुः (गुरु) साक्षात् (साक्षात्) विश्वेश्वरः (विश्वेश्वर) निश्चितम् (निश्चित) तारकम् (तारक ब्रह्म सच्चिदानन्दघन परमात्मा)॥१३॥

अर्थ – श्रीगुरुदेव का निवास स्थान ही काशीक्षेत्रस्वरूप है, उनका चरणोदक जान्हवी के जल के सदृश है, गुरु साक्षात् विश्वेश्वर हैं और निश्चय ही संसार भवत्राता सच्चिदानन्दघन परमात्मा हैं॥१३॥

तीर्थराजः प्रयागोऽसौ गुरुमूर्तौ नमोनमः।
गुरुमूर्तिं स्मरेन्नित्यं गुरुनाम सदा जपेत्।
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यं न भावयेत्॥१४॥

अन्वय – असौ (वह) तीर्थराजः प्रयागः (तीर्थराज प्रयाग) गुरुमूर्तौ (गुरुमूर्ति को) नमोनमः (नमस्कार नमस्कार) नित्यं (नित्य) गुरुमूर्तिम् (गुरुमूर्ति को) स्मरेत् (स्मरण करें) सदा (सदा) गुरुनाम (गुरुनाम) जपेत् (जपे) गुरोः (गुरु का) आज्ञाम् (आज्ञा) प्रकुर्वीत (पालन करे) गुरोरन्यम् (गुरु के अतिरिक्त किसी को) न भावयेत् (चिन्तन न करे)॥१४॥

अर्थ – वे तीर्थराज प्रयाग हैं; गुरुमूर्ति को नमस्कार, नमस्कार। नित्य गुरुमूर्ति का स्मरण करे, सर्वदा गुरुनाम का जप करे, गुरुदेव की आज्ञा का पालन करे, गुरु के अतिरिक्त किसी अन्य का चिन्तन न करे॥१४॥

"अथवा सर्वपापानां गुरुनामजपस्मृतः।
साक्षादस्य हि कलुषं परिशुद्धं यथाग्निना॥

– कुलार्णव

अग्निद्वारा जिस प्रकार धातुसमूह शोधित होता है, उसी प्रकार गुरुनाम के जप द्वारा प्रत्यक्ष सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

गुरुवक्त्रे स्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः।
स्वाश्रमोक्तं स्वजातिं च स्वकीर्तिम् पुष्टिवर्धिनीम्।
अन्यत् सर्वं परित्यज्य गुरोरन्यं न भावयेत्।।१५।।

अन्वय – ब्रह्म (प्रणव, ब्रह्म तत्व) गुरुवक्त्रे (गुरु के मुख में) स्थितम् (अवस्थित) तत् (उनके) प्रसादतः (प्रसाद से) प्राप्यते (शिष्य लाभ करते हैं) स्वाश्रमोक्तम् (अपने अपने आश्रमविहित) स्वजातिम् (स्वजाति) च (भी) स्वकीर्तिम् (अपनी कीर्ति) पुष्टिवर्धिनीम् (पुष्टिकारक) अन्यत् (अन्य) सर्वम् (सब) परित्यज्य (परित्याग कर) गुरोः (गुरु से) अन्यम् (भिन्न) न भावयेत् (भावना नहीं करे)।।१५।।

अर्थ – ब्रह्मतत्व गुरु के मुख से सुनने पर स्पष्ट होता है। वे अनुभूति से बोलते हैं पठन से नहीं; इसलिए गुरुमुख में ब्रह्मतत्त्व अवस्थित है। गुरु के प्रसाद से शिष्य वह तत्त्व लाभ करने में सफल होते हैं। अपना-अपना आश्रमविहित धर्म, स्वजाति पुष्ट करने वाले कर्म, अपनी कीर्ति और अन्य सब चिन्ता त्यागकर गुरु से भिन्न और कोई चिन्ता न करे। अर्थात् एकमात्र गुरु की ही भावना करे। भावना की वस्तु शुद्ध गुरु होगा, अपना और पार्थिव विषय नहीं सोचें।।१५।।

गुरु वक्त्रे स्थिता विद्या गुरुभक्त्यानुलभ्यते।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरोराराधनं कुरू।।१६।।

अन्वय – गुरुवक्त्रे (गुरुमुख में) विद्या (ब्रह्मविद्या) स्थित (अवस्थित है) गुरुभक्त्या (गुरुभक्ति द्वारा) अनुलभ्यते (प्राप्त

होता है), तस्मात् (इसलिए) सर्वप्रयत्नेन (सब प्रकार के प्रयत्नों से) गुरोः (गुरु की) आराधनम् (आराधना) कुरू (करो)॥१६॥

अर्थ – ब्रह्म विद्या गुरु के मुख में अवस्थित है, शिष्य गुरुभक्ति द्वारा वह लाभ करते हैं। अतएव सब प्रयत्नों के द्वारा गुरु की आराधना करो॥१६॥

गुकारश्चान्धकारः स्याद् रूकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानध्वंसकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः॥१७॥

अन्वय – गुकारः (गु का अर्थ) अन्धकारः (अन्धकार अर्थात अज्ञान) स्यात् (है) च (और) रूकारः (रूकार) तेजः (तेज अर्थात ज्ञान) उच्यते (कहा जाता है) गुरुः (गुरु) एव (ही) अज्ञानध्वसंकम् (अज्ञानध्वंसकारी) ब्रह्म (ब्रह्म) अत्र (इसमें) न संशयः (संशय नहीं है)॥१७॥

अर्थ – गुरु शब्द में "गु" कार का अर्थ अन्धकार अर्थात् अज्ञान और "रू"कार का अर्थ तेज अर्थात ज्ञान कहा जाता है। गुरु ही अज्ञानध्वंसकारी सच्चिदानन्दघन परमात्मा हैं इसमें कोई संशय नहीं है॥१७॥

गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः।
रूकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्तिविमोचकः॥१८॥

अन्वय – प्रथमः वर्णः (प्रथम वर्ण) गुकारः (गुकार) मायादि (माया आदि) गुणभासकः (गुणत्रययुक्त) (पुरुष) द्वितीयः (द्वितीय) रूकारः (रूकार) मायाभ्रान्ति) विमोचकः (विमुक्त) ब्रह्म (ब्रह्म)॥१८॥

अर्थ – गुरु शब्द में प्रथम वर्ण "गुकार" माया और सत्वादि गुणत्रययुक्त पुरुष द्योतक है और द्वितीय वर्ण "रूकार" माया-भ्रान्ति-विमुक्त पुरुष का द्योतक है॥१८॥

(गुकार का अर्थ सगुण ब्रह्म और रूकार का अर्थ निर्गुण ब्रह्म है। गुरु सगुण-ब्रह्म रूप से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड सजकर अपने आप से क्रीड़ा करते है। गुरु होकर उपदेश देते हैं और शिष्यरूप में उपदेश ग्रहण करते हैं। निर्गुण-ब्रह्मरूप में अपने आप में अचल भाव में अवस्थित होते हैं। एक गुरु ही सगुण-निर्गुण ब्रह्म, आत्मा, अवतार सब कुछ है॥१८॥

गुशद्धश्चान्धकारः स्याद् रूशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्याभिधीयते॥१९॥

अन्वय – "गु" शब्द (गु शब्द) अन्धकारः स्यात् (होता है) च (और) "रू" शब्द (रू शब्द) तत् (उसका) निरोधकः (निरोधक) अन्धकार (अन्धकार के) निरोधित्वात् (निरोध के कारण) गुरुः (गुरु) इति (इस नाम से) अभिधीयते (कहे जाते हैं)॥१९॥

अर्थ – गुरु शब्द में "गु" का अर्थ अन्धकार है, "रू" शब्द उसका निरोधकारी है। रजतमगुणरूप अन्धकार का निरोध अर्थात सत्त्वगुण द्वारा उन दोनों गुणों का निरोध करते हैं, इसलिए वे गुरु कहे जाते हैं॥१९॥

एवं गुरुपदं श्रेष्ठं देवानामपि दुर्लभम्।
हाहा-हूहू-गणैश्चैव गन्धर्वाद्यैश्च पूज्यते॥२०॥

अन्वय – एवं (इस प्रकार) श्रेष्ठं (श्रेष्ठ) गुरुपदम् (गुरु शब्द) देवनामापि (देवताओं के लिए भी) दुर्लभम् (दुर्लभ है) हाहा-हूहू

गणैः (हाहा-हूहू गण) एवं च (एवं) गंधर्वसमूह) च (भी) पूज्यते (पूजा करते हैं)॥२०॥

अर्थ – इस प्रकार श्रेष्ठ गुरु शब्द देवता गण को भी दुर्लभ हैं। हाहा-हूहू-गण एवं गन्धर्व समूह भी इनकी पूजा करते हैं, अर्थात गुरु शब्द का जप ध्यान करते हैं॥२०॥

आसनं शयनं वस्त्रं वाहनं भूषणादिकम्।
साधकेन प्रदातव्यं गुरोः सन्तोषकारणात्॥२१॥

अन्वय – साधकेन (साधक के द्वारा) गुरोः (गुरुदेव के) सन्तोषकारणात् (सन्तोष के लिए) आसनम् (आसन) शयनम् (शय्या) वस्त्रम् (वस्त्र) वाहनं (वाहन) भूषणादिकं (भूषण आदि) प्रदातव्यम् (प्रदान करना चाहिए)॥२१॥

अर्थ – साधक को गुरुदेव के सन्तोष के लिए आसन, शय्या, वस्त्र, वाहन और भूषण आदि प्रदान करना उचित है॥२१॥

दीर्घं दण्डं नमस्कृत्य निर्लज्जो गुरुसन्निधौ।
आत्मदारादिकं सर्वं गुरवे च निवेदयेत्॥२२॥

अन्वय – गुरुसन्निधौ (गुरु के सान्निध्य में) निर्लज्जः (निर्लज्ज) दीर्घदण्डम् (दण्डवत्) नमस्कृत्य (प्रणामपूर्वक) गुरवे (गुरु को) आत्मदारादिकम् (अपने को और अपनी स्त्री-पुत्र आदि को) सर्वम् (सब) निवेदयेत् (निवेदन करे)॥२२॥

अर्थ – गुरु के सान्निध्य में निर्लज्ज होकर दण्डवत् प्रणामपूर्वक अपने आप को और अपनी स्त्री, पुत्र आदि सबको गुरु को निवेदन कर देना चाहिए।

(समस्त भार उनके श्रीचरण में समर्पित करके निश्चिन्त हो। जीव की अहन्ता, ममता का भार बड़ा विषम भार है, यह भार ग्रहण करने में एक मात्र गुरु ही समर्थ है। उनके चरणकमलों में "मैं-मैं-मेरा-मेरा" यह अहन्ता, ममता निवेदन करे। अनन्तर उनका प्रसाद स्वरूप "मैं-मेरा" लेकर व्यवहार करे। अर्थात श्री गुरुदेव ही सब कर्मों के प्रेरक हैं, यह निश्चित रूप से जानकर "गुरु-गुरु" जप करते-करते कर्म-क्षय हो जाएगा)॥२२॥

कृमिकीटभस्मविष्ठादुर्गन्धमलमूत्रकम् ।
श्लेष्मरक्तत्वचं मांसं तनुरित्थं वरानने॥२३॥

अन्वय – वरानने (हे सुवदने) कृमि (कृमि) कीट (कीड़ा) भस्म (भस्म) विष्ठा (विष्ठा) दुर्गन्ध मलमूत्रकम् (मूलमूत्र) श्लेष्मा (श्लेष्मा) रक्त (रक्त) त्वचम् (त्वचा) मांसम् (मांस) तनुः (देह) इत्थम् (इस प्रकार)॥२३॥

अर्थ – हे सुवदने! यह शरीर कृमि, कीट, भस्म, विष्ठा, दुर्गन्ध, मलमूत्र, श्लेष्मा, रक्त, मांस, त्वचा से भिन्न और कुछ नहीं है॥२३॥

(जो देह लेकर मनुष्य "मैं मैं" करता है उस देह का परिणाम है कृमि और कीट या भस्म अथवा विष्ठा। अगर देह का दाहसंस्कार नहीं किया जाये तो उसमें कृमि और कीट पैदा होंगे और दाह संस्कार करने से वह भस्म में परिणत होगा। दाह संस्कार के अभाव में अगर सियार और कुत्तों ने उसे खाया तो देह उनकी विष्ठा में परिणत होगी। यही तो देह की परिणति है। जब तक देह में प्राण रहते हैं तब तक मल मूत्र द्वार से दुर्गन्धयुक्त मलमूत्र निकलता है। मल,

श्लेष्मा, लार, पसीना इत्यादि हर वक्त निकलता है यह देह चर्म से ढका हुआ रक्तमांसमय मल का घड़ारूप है। इस अनात्म, अनित्य, अशुचि देह में "अहं" अभिमान करने पर जीव के आवागमन की निवृत्ति नहीं होती॥२३॥

संसारवृक्षमारूढ़ा पतन्ति नरकार्णवि।
येनाहृतमिदं विश्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः॥२४॥

अन्वय – संसारवृक्षम् (संसार वृक्ष पर) आरूढ़ाः (चढ़कर) नरकार्णवे (नरकरूप सागर में) पतन्ति (गिरते हैं) येन (जो) इदम् (इस) विश्वम् (विश्ववासीगण का) उद्धृतम् (उद्धार करते हैं) तस्मै (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरुदेव को) नमः (नमस्कार)॥२४॥

अर्थ – देहाभिमान के कारण जीव संसार में बार-बार यातायात करके नरक में गिरते हैं, जो इस विश्व के निवासी का उद्धार करते हैं उन गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ॥२४॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥२५॥

अन्वय – गुरुः (गुरु) ब्रह्मा (ब्रह्मा) गुरुः (गुरु) विष्णुः (विष्णु) गुरुः (गुरु) देवः (देव) महेश्वरः (महेश्वर) गुरुः (गुरुः) एव (ही) परं ब्रह्म (सच्चिदानन्दघन परमात्मा ओंकार तस्मैं (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरु को) नमः (मैं नमस्कार करता हूँ)॥२५॥

अर्थ – श्रीगुरुदेव सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, गुरु पालनकर्ता विष्णु, गुरुदेव संहारकर्ता शिव हैं, एवं गुरु ही सच्चिदानन्दघन परमात्मा ओंकार हैं; मैं उन गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ॥२५॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।२६।।

अन्वय – येन (जिसने) अज्ञानतिमिरान्धस्य (अज्ञान अन्धकार से अन्धे जीव को) ज्ञानांजनशलाकया (ज्ञानरूप अंजनशलाका द्वारा) चक्षुः (नेत्र) उन्मीलितम् (खोलते हैं) तस्मै (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरुदेव को) नमः (प्रणाम करता हूँ)।।२६।।

अर्थ – बहुदर्शनरूप अज्ञान अन्धकार से अन्धे जीव के चक्षु सर्वात्म ज्ञान लाभ के उपाय मन्त्ररूप अंजनशलाका द्वारा जो खोल देते हैं उन श्री गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ।।२६।।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।२७।।

अन्वय – येन (जिसने) अखण्डमण्डलाकारम् (अखंड मंडल के आकार से) चराचरम् (पृथ्वी को) व्याप्तम् (व्याप्त है) येन (जो) तत् (वह) पदम् (पद दर्शितम् (दिखलाते हैं) तस्मैं (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरुदेव को) नमः (प्रणाम करता हूँ)।।२७।।

अर्थ – जो सच्चिदानन्दघन ओंकार अखंडमंडल आकार से पृथ्वी में व्याप्त हैं उस परमपद के दर्शन जो कराते हैं उन श्रीगुरु देव को प्रणाम करता हूँ।।२७।।

स्थावरं जंगमं व्याप्तं यत्किञ्चित् सचराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।२८।।

अन्वय – यत् (जो) विशेषण-अविषयीभूत (किञ्चित्) (सच्चिदानन्दघन परमात्मा ओंकार) सचराचरम् (आकाश के सहित)

स्थावरम् (पर्वत, और) जंगमम् (गतिशील प्राणीभूत समूह) व्याप्तम् (व्याप्त किए हुए हैं) तत्पदम् (उस परम ब्रह्म को) येन (जिन्होंने) दर्शितम् (दर्शन कराये हैं) तस्मै) (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरुदेव को) नमः (प्रणाम करता हूँ)॥२८॥

अर्थ – जो सच्चिदानन्दघन परमात्मा ओंकार आकाश के साथ पर्वत और प्राणीसमूह में व्याप्त होकर स्थित हैं उस परमब्रह्म के दर्शन जिन्होंने कराये हैं उन श्रीगुरुदेव को प्रणाम करता हूँ॥२८॥

चिन्मयं व्यापितं सर्वं त्रैलोक्यम् सचराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥२९॥

अन्वय – सचराचरम् (सचराचर) सर्वम् (समस्त) त्रैलोक्यम् (त्रिभुवन में) चिन्मयम् (चिन्मय रूप से) व्यापितम् (व्याप्त होकर स्थित है) तत् (वह) पदम् (परमपद) येन (जिन्होंने) दर्शितम् (दर्शन कराये हैं) तस्मै (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरुदेव को) नमः (प्रणाम करता हूँ)॥२९॥

अर्थ – जो चिन्मयरूप में समस्त त्रिभुवन व्याप्त करके स्थित हैं, उस परम सूक्ष्मरूप के दर्शन जिन्होंने कराये हैं उन श्रीगुरुदेव को प्रणाम करता हूँ॥२९॥

(जिस प्रकार सूत्र में मणि ग्रथित रहने से मणि दिखती है लेकिन सूत्र नहीं दिखता है, उसी तरह जो सूक्ष्म कारण आत्मा परम-पुरुष में स्थूल कार्य रूप त्रिभुवन प्रतिभासित होता है उस सूक्ष्म कारण-आत्मा को स्थूल दृष्टि द्वारा देखा नहीं जा सकता है, उनके दर्शन कराने के लिए जो दिव्य दृष्टि दान करते हैं उन श्रीगुरुदेव को प्रणाम॥२९॥

सर्वश्रुतिसिरोरत्नविराजितपदाम्बुजम् ।
वेदान्ताम्बुजसूर्याय यस्तस्मै श्रीगुरवे नमः।।३०।।

अन्वय – सर्वश्रुतिशिरोरत्न (सब वेदों की शिरोमणि उपनिषद्) विराजित (सुभोशित) पदाम्बुजः (चरण कमल) यः (जो) वेदान्ताम्बुजः सूर्य (वेदान्त कमल का दिनकर) तस्मै (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरुदेव को) नमः (प्रणाम करता हूँ)।।३०।।

अर्थ – वेदसमुदाय के शिरोमणि, सदृश उपनिषद् समूह द्वारा जिनका चरण कमल सुशोभित हुआ है, जो वेदान्तरूप कमल के दिनकर हैं, उन श्रीगुरुदेव को प्रणाम करता हूँ।।३०।।

चैतन्यः शाश्वतः शान्तो व्योमातीतोनिरञ्जनः।
बिन्दुनाद कलातीततस्मै श्रीगुरवे नमः।।३१।।

अन्वय – चैतन्यः (चैतन्य) शाश्वतः (नित्य) शान्तः (निश्चल) व्योमातीतः (आकाश से परे) निरंजन (सगुण-निर्गुण उपधिशून्य) बिन्दुनादकलातीतः (बिन्दुनाद कला का अतीत) तस्मै (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरु को) नमः (प्रणाम करता हूँ)।।३१।।

अर्थ – जो इस जड़ जगत के कारण-स्वरूप हैं और चैतन्य, नित्य, निश्चल, आकाश से परे, सगुण-निर्गुण उपाधिशून्य और बिन्दु, नाद और कला से अतीत हैं, उन श्री गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ।।३१।।

(सगुण साधन द्वारा इष्ट साक्षात्कार होने पर साधक जीवन्मुक्त होकर विदेह-मुक्ति या निर्गुण समाधि लाभ के लिए आदि ब्रह्ममन्त्र प्रणव लाभ करते हैं। प्रणव का अ, उ, म्, नाद, बिन्दु, कला

और कलातीत ये सात अंग हैं। अकार स्थूल देह है, उकार सूक्ष्म देह और मकार कारण देह है। अकार मकार में, उकार मकार में और मकार नाद में लय करता है। "नाद एवं महद् ब्रह्म", "नादः परमपुरुषः" – नाद ही महत् ब्रह्म और नाद ही परम पुरुष है। नाद के चार स्तर हैं – नाद, बिन्दु, कला, कलातीत। कलातीत महत् ब्रह्म प्रकृति, कला महत् तत्त्व बुद्धि और बिन्दु अहंकार, वे सब श्री गुरु हैं। वे कलातीत अर्थात प्रकृति का भी अतीत है। यहाँ कला और कलातीत अर्थात बुद्धि और प्रकृति को एक करके दिखलाया गया है।

तारसार उपनिषद् में पाया जाता है –

"अकाराद्भवद् ब्रह्मा जाम्बवनिति संज्ञकः।
उकाराक्षरसम्भूत उपेन्द्रो हरिनायकः।।
मकाराक्षरसम्भूतः शिवस्तु हनुमान् स्मृतः।
बिन्दुरीश्वरसंज्ञस्तु शत्रुघ्नश्चक्रराट् स्वयम्।।
नादो महाप्रभुर्ज्ञेयो भरतः शंखनामकः।
कलायाः पुरुषः साक्षाल्लक्ष्मणो धरणीधरः।।
कलातीता भगवती स्वयं सीतेति संज्ञिता।
तत्परः परमात्मा च श्री रामः पुरुषोत्तमः।।

आकार से ब्रह्मा जाम्बवान्, उकार से उपेन्द्र हरिनायक सुग्रीव आया है, मकार अक्षर से शिव हनुमान, बिन्दु ईश्वर संज्ञक स्वयं चक्रराट् शत्रुघ्न, नाद शंख महाप्रभु भरत, कला से साक्षात् धरणीश्वर लक्ष्मण, कलातीता स्वयं भगवती सीता, तत्पर परमात्मा पुरुषोत्तम श्रीराम हैं।

साधकों में किसी को पहले नाद आता है और किसी को ज्योति आती है, वह नाद बिन्दु अथवा बिन्दुनाद – इस प्रकार दोनों रूप शास्त्र में देखे जाते हैं। नाद-अनाहत ध्वनि कोटि-सहस्त्र प्रकार का होता है। बिन्दु या ज्योति कोटि-शत प्रकार का होता है।।३१।।

ज्ञानशक्तिसमारूढ़स्तत्वमालाविभूषितः ।
भुक्ति-मुक्ति प्रदातारै तस्मै श्रीगुरवे नमः।।३२।।

अन्वय – ज्ञानशक्तिसमारूढ़: (जो ज्ञान और शक्ति सम्पन्न है) तत्त्वमालाविभूषितः (प्रकृति प्रभूति चौबीस तत्वमालाभूषित) च (एवं) भुक्ति-मुक्ति प्रदाता (भोग और मोक्ष के दाता हैं) तस्मैं (उन) श्रीगुरवे (श्री गुरुदेव को) नमः (प्रणाम करता हूँ)।।३२।।

अर्थ – जो ज्ञान और शक्तिसम्पन्न है और प्रकृति, महत् तत्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध-पंचतन्मात्र; मन; श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण – पंच ज्ञानेंन्द्रिय; वाक, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ – पंच कर्मेन्द्रिय; और क्षिति, जल, तेज, मरूत, व्योम-पंच महाभूत, इस चौबीस तत्वमाला द्वारा विशेष रूप से भूषित अर्थात इस चौबीस तत्त्वमाला रूप अलंकार से जो आवृत्त हैं अथवा तत्वसमूह ने जिन्हें आवृत्त कर रखा है – उन भोग और मोक्षप्रदाता श्री गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ।।३२।।

अनेकजन्मसम्प्राप्त कर्मबन्धविदाहिने ।
आत्मज्ञानप्रदानेन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।३३।।

अन्वय – (जो) आत्मज्ञानप्रदानेन (आत्मतत्वज्ञान प्रदान के द्वारा) अनेकजन्मसम्प्रात (अनेक जन्मों में कृत) कर्मबन्धविदाहिने

(कर्मबन्ध का छेदन करते हैं) तस्मै (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरुदेव को) नमः (प्रणाम करता हूँ)॥३३॥

अर्थ – जो आत्मतत्व ज्ञान प्रदान द्वारा जीव का अनेक जन्मकृत कर्मबन्धन नाश करते है उन श्री गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ॥३३॥

शोषणं भवसिन्धोश्च ज्ञापनं सारसम्पदाम्।
गुरोः पादोदकं सम्यक् तस्मै श्रीगुरवे नमः॥३४॥

अन्वय – गुरोः (श्रीगुरुदेव का) पादोदकम् (चरमोदक) सम्यक् (उत्तम रूप से) भवसिन्धोः (संसार सागर शोषणम् (शोषण करता है) च (एवं) सारसम्पदाम् (पराभक्ति) ज्ञापनम् (दान करता है) तस्मै (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरुदेव को) नमः (प्रणाम करता हूँ)॥३४॥

अर्थ – जिस गुरुदेव का चरणोदक उत्तम रूप से भवसागर का शोषण करता है और सारसम्पद् पराभक्ति दान करता है उन श्रीगुरुदेव को प्रणाम करता हूँ॥३४॥

न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोरधिकं तपः।
तत्वज्ञानात् परं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः॥३५॥

अन्वय – गुरोः (गुरु से) अधिकम् (अधिक) तत्वम् (तत्व) न (नहीं है) गुरोः (गुरु से) अधिकम् (अधिक) तपः (तपस्या) न (नहीं है) तत्वज्ञानात् (गुरु तत्वज्ञान से) परम् (श्रेष्ठ कुछ) न-अस्ति (नहीं है) तस्मै (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरुदेव को) नमः(प्रणाम करता हूँ)॥३५॥

अर्थ – श्री गुरुदेव से श्रेष्ठ कोई तत्त्व नहीं है, श्रीगुरुदेव से श्रेष्ठ तपस्या नहीं है, गुरुतत्त्वज्ञान से श्रेष्ठ कुछ नहीं है, उन श्री गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ॥३५॥

तत्त्वज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है। चौबीस आदितत्त्व जड़ हैं, "मैं चैतन्य हूँ, मैं प्रकृति से भिन्न हूँ," इस ज्ञान द्वारा आत्मा संसारबन्धन से मुक्त होता है। एक मात्र गुरु ही स्थावर-जंगम सब रूप से विराजमान हैं। गुरु के अतिरिक्त और कुछ नहीं है – इस प्रकार का तत्त्वज्ञान ही श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान है। तपस्या – द्वन्द्व सहन अर्थात् क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, उत्थान, उपवेशन, काष्ठमान (इंगित द्वारा भी कुछ प्रकाश न करना) और आकार मौन (बात नहीं करना) और कृच्छ्रचान्द्रायण, सान्तापम इत्यादि व्रत अनुष्ठान का नाम तपस्या है। श्री गीता में भगवान ने शारीरिक, वाचिक, मानसिक आदि तपस्या की जो बातें कही हैं, गुरुसेवा उस सब तपस्या से श्रेष्ठ है। गुरुसेवारूप तपस्या द्वारा सत्वगुण लाभ होता है, सत्वगुण से मन स्थिर होता है, मन को जीतने से आत्म ज्ञान लाभ होता है और आत्मज्ञान लाभ से ही मनुष्य कृतार्थ हो जाता है :–

"तपसा प्राप्यते सत्वं सत्वात् संप्राप्यते मनः।
मनसा प्राप्यते ह्यात्मा ह्यात्मप्राप्त्या निवर्तते।।

– मैत्रेयी उपनिषद्

तपस्या द्वारा ही सर्वभूत के हृदय गुहावासी, परम ज्योति; स्वरूप एवं अधोक्षज अर्थात् इन्द्रियों के अगोचर श्री भगवान को पुरुष शीघ्र लाभ करता हैं।

"तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तधोक्षजम्।
सर्वभूतगुहावासम् जसा विन्दते पुमान्।।

– श्रीभागवत

जिस तपस्या द्वारा मानव आत्मज्ञान लाभ करके परम

ज्योति:स्वरूप श्री भगवान को लाभ करने में समर्थ होता है, वह तपस्या भी गुरुदेव से तुच्छ है॥३५॥

मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः॥३६॥

अन्वय – मन्नाथः (मेरे स्वामी) श्रीजगन्नाथः ("श्रीजगन्नाथ" मद्गुरुः (मेरे गुरु) श्रीजगद्गुरुः (श्रीजगद्गुरु) ममात्मा (मेरा आत्मा सर्वभूतात्मा (सर्वभूतों का आत्मा) तस्मै (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरुदेव को) नमः (प्रणाम करता हूँ)॥३६॥

अर्थ – मेरे स्वामी श्रीजगन्नाथ, मेरे गुरु जगत् के गुरु जिन गुरु द्वारा यह ज्ञान मिला है कि मेरी आत्मा सर्वभूत की आत्मा – उन गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ॥३६॥

गुरुआदिअनादिश्च गुरुः परमदैवतम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः॥३७॥

अन्वय – गुरुः (गुरु) आदि; (आदि) च (और) अनादिः (अनादि) गुरुः (गुरु) परमदैवतम् (परम देवता) गुरोः (गुरु से) परतरम् (श्रेष्ठतर) न अस्ति (नहीं है) तस्मै (उन) श्रीगुरवे (श्रीगुरुदेव को) नमः (प्रणाम करता हूँ)॥३७॥

अर्थ – गुरु सृष्टि का आदि एवं स्वयं अनादि हैं, गुरु परम देवता है। गुरु की अपेक्षा श्रेष्ठतर कुछ नहीं है। ऐसे श्री गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ॥३७॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥३८॥

अन्वय – गुरोः (गुरुदेव की) मूर्तिः (मूर्ति) ध्यानमूलम् (ध्यान का मूल) गुरोः (गुरु का) पदम् (पादपद्म) पूजामूलम् (पूजा का मूल) गुरोः (गुरु का वाक्यम् (वाक्य) मंत्रमूलम् (मंत्रमूल) गुरोः (गुरु की) कृपा (कृपा) मोक्षमूलम् (मोक्ष का आदि कारण)॥३८॥

अर्थ – श्रीगुरुदेव की मूर्ति ध्यान का मूल, गुरुदेव का पादपद्म पूजा का मूल, गुरु वाक्य मंत्र का मूल और गुरुकृपा मोक्ष का आदि कारण है॥३८॥

सप्तसागर पर्यन्तं तीर्थस्थानं फलं तथा।
गुरोरङ्घ्री जलाद् बिन्दुः सहस्त्रांशे न दुर्लभम्॥३९॥

अन्वय – सप्तसागरपर्यन्तम् (सप्त सागर तक) तीर्थस्थानं फलम् (तीर्थ स्नान का फल) तथा (उस प्रकार) सहस्त्रांशे (सहस्त्र अंश में) न दुर्लभम् (दुर्लभ नहीं है) गुरोरङ् घ्री (गुरुपादपद्म का) जलात् (जल का) बिन्दुः (एक बूंद) यथा (जिस प्रकार) दुर्लभम् (दुर्लभ है)॥३९॥

अर्थ – श्रीगुरुदेव के पाद पद्म का एक बूंद जल जिस प्रकार दुर्लभ है, सप्तसागरपर्यन्त तीर्थ स्थान का फल उसके सहस्त्रांश में भी दुर्लभ नहीं है॥३९॥

(सप्तसागर और साढ़े तीन करोड़ तीर्थ स्नान फल की अपेक्षा गुरुपादोदक की महिमा अधिक है। तीर्थस्नानादि द्वारा मात्र पापक्षय होता है, लेकिन श्रीगुरुदेव के चरणारविन्द से गलित एक बिन्दु जल जन्म-मरण-संकुल संसार सागर से उद्धार करके सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एकीभूत कर देता है)॥३९॥

गुरुरेव जगत् सर्वं ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात् सम्पूजयेत् गुरुम्।।४०।।

अन्वय – गुरुः (गुरु) एव (ही) ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकम् (ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक) सर्वम् (समस्त) जगत् (जगत) गुरोः (गुरु से) परतरम् (श्रेष्ठतर) न अस्ति (कोई नहीं है) तस्मात् (इसलिए) गुरुम् (गुरु को) सम्पूजयेत् (अच्छी तरह पूजो)।।४०।।

अर्थ – गुरु ही ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक सम्पूर्ण जगत हैं, गुरु से श्रेष्ठतर कोई नहीं हैं। इसलिए गुरु की पूजा सम्यक् रूप से करो।।४०।।

(जगत् का सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु एवं नाशकर्ता शिव ये लोग त्रिगुण यानी गुणत्रय का आश्रय करके सृजन, पालन, लय करते है। जगत के मूलकारण ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, अ, उ, म्, ओंकार। ओंकार ही गुरु, सारा जगत् ही गुरु है। पशु, पक्षी, कीट, पतंग, स्थावर, जंगम, अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड सब ही गुरु हैं। जो देखोगे, जो सुनोगे, जिसके द्वारा आकृष्ट होंगे, जिससे विरक्त हो जाओगे, वह सब श्रीगुरुदेव हैं। श्रीगुरुदेव का ध्यान करने के लिए निर्जन स्थान में जाकर, बैठकर, आँखें मूंद कर कल्पना में श्रीगुरुदेव की मूर्ति आंकनी नहीं पडेगी। तुम जो देखते हो सब ही श्रीगुरुदेव हैं। गुरु के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जगत् रूप से गुरु खेल करते हैं। अब प्रणाम करने का अभ्यास करो। अच्छा-बुरा, सत्, असत्, शुभ-अशुभ, सुन्दर-कुरूप, प्रिय-अप्रिय जो कुछ है सब को गुरु मान कर प्रणाम करना ही चरम साधन है।)

"मां नमस्कुरू" श्रीगीता की यही वाणी है, इसकी अपेक्षा और श्रेष्ठ साधन नहीं है)॥४०॥

ज्ञानं विना मुक्तिपदं लभते गुरुभक्तितः।
गुरोः परतरं नास्ति ध्येयोऽसौ गुरुमार्गिना॥४१॥

अन्वय – गुरुभक्तिः (गुरुभक्ति से) ज्ञानम् (ज्ञान) विना (बिना) मुक्तिपदम् (मुक्तिपद) लभते (लाभ करता है) गुरोः (गुरु की अपेक्षा) परतरम् (श्रेष्ठतर) न अस्ति (कुछ नहीं है) गुरुमार्गिना (गुरु मार्गी लोग) असौ (उस गुरु को) ध्येयः (ध्यान करेंगे)॥४१॥

अर्थ – मानव बिना ज्ञान भी गुरु भक्ति से मुक्ति लाभ करता है, गुरु की अपेक्षा श्रेष्ठतर और कुछ भी नहीं है, गुरुमार्गी लोग उस गुरु का ही ध्यान करेंगे॥४१॥

(भक्तों में तीन प्रकार के भेद हैं – भगवत् प्रपन्न, भागवत् प्रपन्न और आचार्य प्रपन्न। कोई भक्त भगवान के भजन को प्रधान भाव से ग्रहण करके भगवत् सेवा में तत्पर होते हैं, कोई भक्त भक्तलोगों की सेवा को प्रधान भाव से ग्रहण करके उन्हीं लोगों की सेवा में आत्मनियोग करते हैं, और कोई-कोई "गुरु ही सब हैं इनकी सेवा द्वारा मैं कृतार्थ हो जाऊंगा", इस प्रकार विचार कर और अनन्यभाव से गुरुसेवा ही जीवन का व्रत, सब साधनाओं की सार साधना है, इस निश्चयपूर्वक गुरुसेवा में तत्पर होते हैं। इन्हीं लोगों को लक्ष्य करके "गुरुमार्गिना" कहा गया है)॥४१॥

तस्मात् परतरं नास्ति नेति नेतीति वै श्रुतिः।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वदाऽराधयेद गुरुम्॥४२॥

अन्वय – श्रुतिः (वेद ने) नेति (यह नहीं) नेति (यह नहीं) इति (ऐसा कह कर) वै (निश्चय किया है) तस्मात् (उससे) परतरम् (श्रेष्ठतर कुछ भी) न अस्ति (नहीं है); कर्मणा (कर्म-द्वारा) मनसा (मन-द्वारा) वाचा (वाक्य-द्वारा) सर्वदा (सदा) गुरुम् (गुरु की) आराधयेत् (आराधना करे)॥४२॥

अर्थ – वेदों ने "यह नहीं है, यह नहीं है" बोलकर निश्चय किया है कि गुरु की अपेक्षा श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं है। गुरु आदिष्ट कर्मों का सफल अनुष्ठान करके एवं वाक्य द्वारा उनका नाम कीर्तन और स्तवादि पाठ करके और मन द्वारा गुरु उपदिष्ट उनका परम चिन्मय स्वरूप चिन्तन करके सब समय श्री गुरुदेव की आराधना करनी चाहिए। कार्य, मन और वाक्य उनकी सेवा के अतिरिक्त एक क्षण भी और कुछ नहीं करेगा॥४२॥

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मा विष्णुः सदाशिवः।
सृष्ट्यादिकसमर्थास्ते केवलं गुरुसेवया॥४३॥

अन्वय – ब्रह्मा (ब्रह्मा) विष्णुः (विष्णु) सदाशिवः (सदाशिव) केवलम् (केवल) गुरुसेवया (गुरु सेवा द्वारा) गुरोः (गुरु के) कृपाप्रसादेन (कृपाप्रसाद से) ते (वे लोग) सृष्ट्यादिक-समर्थाः (सृष्टि, स्थिति, लय कार्य में समर्थ हुए हैं)॥४३॥

अर्थ – ब्रह्मा, विष्णु, सदाशिव केवल गुरु सेवा द्वारा गुरु के कृपा प्रसाद से सृष्टि, स्थिति, लय करने में समर्थ हुए हैं॥४३॥

प्रत्येक ब्रह्माण्ड में एक-एक ब्रह्मा, विष्णु और सदाशिव रहते हैं,उन सबके ऊपर हैं गुरु। उन्हीं गुरु की कृपा से हर ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा, विष्णु, सदाशिव-सृष्टि, स्थिति, लय करने का सामर्थ्य पाते हैं॥४३॥

देवकिन्नरगन्धर्वाः पितरो यक्षचारणाः।
मुनयोऽपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणाविधिम्।।४४।।

अन्वय – देवकिन्नरगन्धर्वाः (देव, किन्नर और गन्धर्व लोग) पितरः (पितृगण) यक्षचारणाः (यक्ष चारण समूह) अपि (और) मुनयः (मुनि लोग) गुरुशुश्रूषाविधिम् (गुरुशुश्रूषा प्रणाली) न जानन्ति (नहीं जानते हैं)।।४४।।

अर्थ – देव, किन्नर, गन्धर्व, पितृ, यक्षचारण और मुनि लोग सच्चिदानन्दघन पुरुषोत्तम गुरुदेव की शुश्रूषा प्रणाली नहीं जानते हैं।।४४।।

वे लोग अगर सेवा प्रणाली जानते तो अपनी स्थिति में सन्तुष्ट नहीं होते, मुक्त होने की चेष्टा करते हैं।।४४।।

न मुक्ता देवगन्धर्वाः पितरो यक्षचारणाः।
ऋषयः सर्वसिद्धाश्च गुरुसेवापराङ्मुखाः।।४५।।

अन्वय – गुरुसेवापराङ्गमुखाः (गुरु सेवा में पराङ्गमुख) देवगन्धर्वाः (देवता और गन्धर्व लोग) (पितरः (पितृ समूह) यक्षचारणाः (यक्ष चारण) ऋषयः (ऋषिलोग) च (और) सर्वसिद्धा (सब सिद्धवृन्द) न मुक्ताः (मुक्त नहीं हैं)।।४५।।

अर्थ – गुरुसेवापराङ्गमुख देवता और गन्धर्वगण, पितृ और यक्षचारणगण, ऋषि और सिद्धवृन्द मुक्त नहीं हैं – अर्थात् ये लोग भी गुरु सेवा करने पर ही मुक्त हो सकते हैं।।४५।।

ध्यानं श्रुणु महादेवि सर्वानन्दप्रदायकम्।
सवसौख्यकरं नित्यं भुक्ति-मुक्ति फलप्रदम्।।४६।।

अन्वय – महादेवि (हे महादेवि) नित्यम् (नित्य) सर्वानन्दप्रदायकम् (सर्व आनन्द प्रदायक) एवं सौख्यकरम् (सब सुख करने वाला) भुक्ति-मुक्ति फलप्रदम् (भोग-मोक्ष-फलप्रद) ध्यानम् (गुरु ध्यान) श्रुणु (श्रवण करो)।।४६।।

अर्थ – हे महादेवि! नित्य, सर्व-आनन्द प्रदायक, सब सुख देने वाला, भोग और मोक्ष फलप्रद गुरुध्यान कहता हूँ, श्रवण करो।।४६।।

सच्चिदानन्दघन परमात्मा गुरुदेव के सगुण और निर्गुण दो रूप हैं। भोगार्थी साधक सगुण गुरुध्यान और गुरुदत्त मंत्र जप द्वारा सगुण समाधि लाभ करके अभिलषित भोग लाभ करते हैं; अनन्तर वैराग्य आने पर मुक्ति के लिए निर्गुण ब्रह्म की उपासना द्वारा मुक्त होने के लिए सद्गुरु का आश्रय करके निर्गुण-मन्त्र लाभ करके उसकी साधना में सिद्ध होकर मुक्तिलाभ करते हैं। साधारणत: सगुण देवता के मन्त्रदाता को गुरु बोला जाता है और निर्गुण ब्रह्म मंत्रदाता को सद्गुरु बोला जाता है नहीं तो गुरु गुरु ही है। वे सत् ही होते है, असत् कभी नहीं होते। सिद्ध गुरु लोग सर्वत्र सद्गुरु, जगद्गुरु कहे जाते हैं। इन लोगों की दीक्षा प्रणाली स्वतन्त्र है। ये लोग दृष्टि द्वारा वाक्य शिष्य के शरीर में शक्ति संचार करते हैं।

यह वक्ष्यमान गुरुध्यान, समस्त निराकार और साकार दोनों गुरु के लिए कहा गया है।।४६।।

निराकार ध्यान

श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं वदामि, श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं भजामि।
श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं स्मरामि, श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं नमामि।।४५।।

अन्वय – श्रीमत् (परम सुन्दर) परं ब्रह्म (पुरुषोत्तम परप्रणव) गुरुम् (गुरु को) वदामि (उच्चारण करता हूँ) श्रीमत् (निखिल सिद्धिसम्पन्न) परं ब्रह्म (सान्द्र सच्चिदानन्द पर-प्रणव) गुरुं (गुरु का) भजामि (भजन करता हूँ) श्रीमत् (सर्व शोभा सम्पन्न) परं ब्रह्म (परमात्मा पर-प्रणव) गुरुम् (गुरु को) स्मरामि (स्मरण करता हूँ) श्रीमत् (विविध विभूति-विभूषित) परम ब्रह्म (परम पुरुष पर-प्रणव) गुरुम् (गुरु को) नमामि (प्रणाम करता हूँ)।।४७।।

अर्थ – परम सुन्दर, पुरुषोत्तम, पर-प्रणव, गुरु का उच्चारण करता हूँ, अर्थात उनका नाम जप करता हूँ; निखिल सिद्धिसम्पन्न, सान्द्र (धन), सच्चिदानन्द, पर-प्रणव गुरु का भजन करता हूँ; सर्वशोभासमन्वित, परमात्मा, पर-प्रणव गुरु को स्मरण करता हूँ; विविध-विभूति विभूषित, परम पुरुष और पर-प्रणव गुरु को प्रणाम करता हूँ।।४७।।

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि।।४८।।

अन्वय – आनन्दम् (आनन्दमय), परमसुखदम् (परम सुखदाता) केवलम् (शुद्ध), ज्ञानमूर्तिम् (ज्ञानस्वरूप), द्वन्द्वातीतम् (शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व-विहीन) गगनसदृशम् (गगन सदृश),

तत्वमस्यादिलक्ष्यम् (''तत्-त्वम्-असि'' आदि वाक्य का लक्ष्य), अकम् (अद्वितीय), नित्यं (चिरस्थायी), विमलम् (शुभ्र), अचलम् (स्थिर), सर्वधीसाक्षिभूतम् (सब बुद्धि का साक्षी स्वरूप), भावातीतम् (उत्पत्ति शून्य), त्रिगुणरहितम् (सत्व आदि गुणत्रय रहित), तं (उस), सद्गुरुम् (सद्गुरु), ब्रह्म (सान्द्र सच्चिदानन्द प्रणव को) नमामि (प्रणाम करता हूँ)॥४८॥

अर्थ – आनन्दमय, परम सुखप्रद, शुद्ध ज्ञानस्वरूप, शीत-उष्ण-आदि द्वन्द्वों से अतीत, गगन सदृश, ''तत् त्वम् असि'' इत्यादि वाक्य का लक्ष्य स्थानीय, अद्वितीय, चिरस्थायी, शुभ्र, स्थिर, सब बुद्धि का साक्षीस्वरूप, उत्पत्तिशून्य सत्त्व आदि गुणत्रय रहित, उस सद्गुरु सान्द्र सच्चिदानन्द पर-प्रणव को प्रणाम करता हूँ॥४८॥

हृदंम्बजे कर्णिकामध्यसंस्थं सिंहासने संस्थितदिव्यमूर्तिं।
ध्यायेद् गुरुं चन्द्रकलावतंसं सच्चित्सुखाभीष्टवरप्रदानं॥४९॥

अन्वय – हृदम्बुजे (हृदयकमल में) कर्णिकामध्यसंस्थम् (बीज कोष के मध्यस्थित), सिंहासने (सिंहासन पर), संस्थित दिव्यमूर्तिम् (सन्निविष्ट आकाश स्वरूप) (शुभ्रनाद स्वरूप) चन्द्रकालावतंसम् (चन्द्रकला शिरोभूषण) सच्चित् सुखाभीष्टवर प्रदानम् (नित्यज्ञान, आनन्द, अभीष्ट वरप्रद) गुरुम् (सान्द्रसच्चिदानन्द पुरुषोत्तम पर-ओंकार-गुरु को) ध्यायेत् (ध्यान करे)॥४९॥

अर्थ – हृदयकमल के बीज कोष के मध्यस्थित, सिंहासन सन्निविष्ट, आकाश-स्वरूप, (शुभ्र-नादरूप), चन्द्रकला शिरोभूषण, नित्यज्ञान, भूमासूख अभीष्ट, वरप्रद, सान्द्र, सच्चिदानन्द, पुरुषोत्तम, परओंकार गुरु का ध्यान करे॥४९॥

हृत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थिरदीपनिभाकृतिम्।
अंगुष्ठमात्रममलं ध्यायेदोङ्कारमीश्वरम्।।

– तन्त्रसार

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरञ्जनम्।
नित्यबोधं चिदानन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम्।।५०।।

अन्वय – नित्यम् (नित्य) शुद्धम् (शुभ्र) निराभासम् (प्रतिबिम्बरहित) निराकारम् (आकारहीन) निरञ्जनम् (निर्मल) नित्यबोधम् (नित्य ज्ञान विशिष्ट) चिदानन्दम् (चिदानन्दमय) ब्रह्म (परमात्मा पर प्रणव) गुरुम् (गुरु को) अहम् (मैं) नमामि (नमस्कार करता हूँ)।।५०।।

अर्थ – नित्य, शुभ्र, प्रतिबिम्बरहित, आकारहीन, निर्मल, नित्यज्ञानविशिष्ट, चिदानन्दमय, परमात्मा, पर-प्रणव गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।।५०।।

साकार ध्यान

श्वेताम्बरं श्वेतविलेपयुक्तं मुक्ताफलाभूषितदिव्यमूर्तिम्।
वामांगपीठे स्थितदिव्यशक्ति मन्दस्मितं पूर्णकृपानिधानम्।।५१।।
आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीसद्गुरुं नित्यमहं भजामि।।५२।।

अन्वय – श्वेताम्बरम् (शुभ्रवस्त्र परिहित), श्वेतविलेपयुक्तम् (श्वेतचन्दन चर्चित), मुक्ताफलाभूषितदिव्यमूर्तिम् (मुक्ता माला से भूषित मनोहर मूर्ति), वामाङ्गपीठे (वाम गोद में), स्तित-दिव्यशक्तिम् (अलौकिक शक्ति विशिष्ट), मन्दस्मितम् (ईषद्हास्यवदन),

पूर्णकृपानिधानम् (पूर्ण कृपा का आधार) आनन्दम् (आनन्दमय), आनन्दकरम् (आनन्दकर), प्रसन्नम् (प्रसन्न), ज्ञानस्वरूपम् (ज्ञान स्वरूप), निजबोधम् (आत्मज्ञान सम्पन्न), योगीन्द्रम् (योगेश्वर), ईड्यम् (पूजनीय), भवरोगवैद्यम् (संसार व्याधि चिकित्सक), श्रीमत् (अति सुन्दर), गुरुम् (श्रीगुरुदेव को) अहम् (मैं), नित्यम् (नित्य) भजामि (भजता हूँ)॥५१-५२॥

अर्थ – शुभ्रवस्त्रपरिहित, श्वेतचन्दनचर्चित, मुक्तामाला से सम्यक् विभूषित, मनोहर आकृतियुक्त, वाम गोद में अलौकिक शक्तिविशिष्ट, ईषत्-हास्यवदन, पूर्ण दया के आधार, आनन्दमय, आनन्दकर, प्रसन्न ज्ञानस्वरूप, आत्मज्ञान सम्पन्न, योगेश्वर, पूजनीय, संसार व्याधिनाशक, अतिसुन्दर श्रीगुरुदेव को मैं नित्य भजता हूँ॥५१-५२॥

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभयकरं शान्तं स्मरेत् तन्नामपूर्वकम्॥५३॥

अन्वय – प्रातः (प्रभात में), शिरसि (मस्तक स्थित) शुक्लाब्जे (श्वेत सहस्त्रदल कमल में), द्विनेत्रम् (दो नेत्र), द्विभुजम् (दो भुज), वराभयकरम् (वर और अभयहस्त); शान्तम् (शमगुणयुक्त), गुरुम् (श्रीगुरुदेव को), तन्नामपूर्वकम् (उनका नाम उच्चारण करके) स्मरेत् (स्मरण करे)।५३॥

अर्थ – प्रभात में मस्तक स्थित श्वेत सहस्त्रदल पद्म में द्विनेत्र, द्विभुज, वर और अभयहस्त, शमगुणयुक्त श्रीगुरुदेव को उनका नाम उच्चारणपूर्वक स्मरण करे॥५३॥

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकः न गुरोरधिकः।
मम शासनतः मम शासनतः, मम शासनतः मम शासनतः।।५४।।

अन्वय – गुरोः (गुरु से) अधिकम् (असाधारण) न नहीं है), गुरोः (गुरु से), अधिकम् (अतिशय), न (नहीं है), मम (मेरे), शासनतः (शास्त्र से), मम (मेरे), शासनतः (उपदेश से), (जानो), गुरोः (गुरु से) अधिकम् (उत्तम), न (नहीं है), गुरोः (गुरु से), अधिकम् (बलवान), न (नहीं है), मम (मेरी) शासनतः (आज्ञा से), मम (मेरे), शासनतः (पालन से) (जानो)।।५४।।

अर्थ – गुरु से असाधारण कोई नहीं है, गुरु से अतिशय कोई नहीं है, गुरु से उत्तम कोई नहीं हैं, गुरु से बलवान कोई नहीं है। मेरे शास्त्र से, मेरे उपदेश से, मेरी आज्ञा से, मेरे पालन से यह अवगत हो। अर्थात मैं जिस तरह गुरु की सर्वश्रेष्ठता जानकर उनका निर्देशपालन अर्थात ध्यान करता हूँ, उसी प्रकार ध्यान करो।।५४।।

एवम्विधम् गुरु ध्यात्वा ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।
तदा गुरुप्रसादेन मुक्तोहमिति भावयेत्।।५५।।

अन्वय – एवम्विधम् (इस प्रकार) गुरुम् (गुरु को) ध्यात्वा (ध्यान करके) गुरु प्रसादेन (गुरु की प्रसन्नता से) स्वयम् (स्वयं) ज्ञानम् (ज्ञान) उत्पद्यते (उत्पन्न है) तदा (उस समय) अहम् (मैं) (मुक्त हूँ) इति (यह) भावयेत् (भावना करे)।।५५।।

अर्थ – इस प्रकार गुरु का ध्यान करने पर गुरु की प्रसन्नता से ज्ञान अपने आप उत्पन्न होता है, उस समय "मैं मुक्त हूँ" यह भावना करो।।५५।।

गुरुणा दर्शितेमार्गे मनः शुद्धि च कारयेत्।
अनित्यं खण्डयेत् सर्वं यत्किञ्चिदात्मगोचरम्।।५६।।

अन्वय – गुरुणा (गुरु द्वारा) दर्शिते (प्रदर्शित) मार्गे (साधन पथ में) मनः शुद्धिम् (मनः शोधन) कारयेत् (करो) च (और) यत किंचित् (जो कुछ) आत्मगोचरम् (आत्म-इन्द्रिय का विषय) तत् (उस सर्वम् (सब) अनित्यम् (अनित्य को) खण्डयेत् (खण्डन करो)।।५६।।

अर्थ – गुरु द्वारा प्रदर्शित साधन पथ में मन शोधन करे और जो कुछ आत्म-इन्द्रिय का विषय है, उस सब अनित्य का खण्डन करे।।५६।।

ज्ञेयं सर्वमनित्यं च ज्ञानं च मन उच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं समं कुर्यात नान्यो प्यात्मद्वितीयकः।।५७।।

अन्वय – सर्वम् (सब) ज्ञेयम् (ज्ञातव्य पदार्थ) अनित्यम् (अनित्य) च (एवं) ज्ञानम् (ज्ञान) मनः (मन) उच्यते (कहा जाता है) ज्ञानम् (ज्ञान) च (और) ज्ञेयम् (ज्ञेय पदार्थ) समम् (समान) कुर्यात् (करे) आत्मद्वितीयकः (आत्मा का द्वितीय) अन्यः (अन्य) अपि (भी) न (नहीं है)।।५७।।

अर्थ – सब ज्ञातव्य पदार्थ को अनित्य और ज्ञान को मन कहा जाता है, ज्ञान और ज्ञेय पदार्थ को समान करे, आत्मा को छोड़ कर कुछ भी दूसरा नहीं है।।।५७।।

(जिस प्रकार कारणरूप मिट्टी से कार्यरूप घड़ा, थाली आदि बनते हैं, कार्य विभिन्न प्रकार का होने पर भी वे सब कारण मिट्टी के

अलावा और कुछ भी नहीं है। उसी प्रकार कारण-परमात्मा प्रणव स्पंदनजात ये सारे पदार्थ अनित्य हैं, केवल एकमात्र प्रणव सत्य है।)॥५७॥

एवं श्रुत्वा महादेवि गुरुनिन्दां करोति यः।
स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥५८॥

अन्वय – महादेवी (हे महादेवि) यः (जो व्यक्ति) एवम् (इस प्रकार महिमा) श्रुत्वा (सुनकर) गुरुनिन्दाम् (गुरु की निन्दा) करोति (करता है) सः (वह) यावत् चन्द्रदिवाकरौ (चन्द्र सूर्य के स्थिति काल तक) घोरम (भीषण) नरकम् (नरक में) याति (वास करता हैं)॥५८॥

अर्थ – हे महादेवि! जो व्यक्ति इस प्रकार महिमा श्रवण करके भी गुरु निन्दा करता है, वह चन्द्र-सूर्य के स्थितिकाल तक भीषण नरक में वास करता है॥५८॥

यावद्देहान्तकालोऽस्ति तावद् देवि गुरुं स्मरेत्।
गुरुलोपो न वक्तव्यः स्वच्छन्दं यदि भावयेत्॥५९॥

अन्वय – देवि (हे देवि) यदि (यदि) स्वच्छन्दम् (निरूद्वेग) भावयेत् (भावना करती हो) यावत् (जब तक) देहान्तकाल (देहान्तकाल) अस्ति (है) तावत् (तब तक) गुरुम् (गुरु को) स्मरेत् (स्मरण करना चाहिए) गुरुलोपः (गुरुलोप हुआ है) न वक्तव्यः (नही कहना चाहिए)॥५९॥

अर्थ – हे देवि! यदि निरुद्वेग भावना करो तो जब तक देहान्त नहीं होता तब तक शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु की शरण करे। "गुरु लोप हुआ है" यह कहना उचित नहीं है॥५९॥

श्री भगवान जीव का उद्धार करने के लिए गुरु रूप धारण कर अवतीर्ण होते है। शिष्य का कर्तव्य है कि वह आमरण उनकी चिन्ता करे। "गुरु लोप हुआ है, अर्थात् गुरु मर गये हैं" यह बात बोलना उचित नहीं है। यह कहने से गुरु में मनुष्य-बुद्धि करने के कारण नरक में जाना पड़ता है। प्रकट-अप्रकट रूप से गुरु सर्वदा वर्तमान हैं, इस प्रकार चिन्ता करना ही मोक्षकामी शिष्यगण का विधेय है॥५९॥

गुरोरग्रे न वक्तव्यमसत्यं च कदाचन।
यो वै हुंकृत्य-हुंकृत्य गुरुं निर्जित्य वादतः
अरण्ये निर्जने स्थाने स भवेद् ब्रह्मराक्षसः॥६०॥

अन्वय – गुरोः (गुरु के) अग्रे (आगे) कदाचन (कभी) असत्यम (असत्य) न वक्तव्यम (बोलना उचित नहीं है) वै (यह निश्चय है) च (और) यः (जो शिष्य) हुंकृत्य-हुंकृत्य (हुम्-हुम् करके) गुरुम् (गुरु को) वादतः (वितर्क में) निर्जित्य (पराजित करता है) सः (वह) निर्जने स्थाने (निर्जन स्थान में) अरण्ये (महा वन में) ब्रह्मराक्षसः (ब्रह्मराक्षस) भवेद् (होता है)॥६०॥

अर्थ – शिष्य के लिए गुरु के पास कभी मिथ्या वचन करना उचित नहीं है यह निश्चित है; जो शिष्य "हुम्-हुम्" करके वितर्क में गुरु को पराजित करता है, यह निर्जन महावन में ब्रह्मराक्षस होता है॥६०॥

संयोगपतितेर्गत्वा परस्यैव च योषितः।
अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः॥

– मानवे

पतित से संयोग, परनारीगमन और विप्र का धन हरण करने वाला ब्रह्मराक्षस होता है।

पारिभाषित ब्रह्मराक्षस

मूर्खः, स्त्री, कच्छपश्चैव, वाजी, बधिर एव च।
गृहीतार्थ न मुञ्चन्ति पञ्चते ब्रह्मराक्षसाः।।

– व्यवहार प्रदीप

मूर्ख, स्त्री, कछुआ, घोड़ा, बहरा – ये पाँच ब्रह्मराक्षस गृहीत अर्थ त्याग नहीं करते हैं।।६०।।

मुनिभिः पन्नगैर्वापि सुरैर्वा शापितो यदि।
कालमृत्युभयाद्वापि गुरु रक्षति पार्वति।।६१।।

अन्वय – पार्वति (हे पार्वति) मुनिभिः (मुनिगण) वा (अथवा) पन्नगैः (सब सर्प) वा (या) सुरैः (देवसमूह) अपि (भी) यदि (यदि) शापितः (शाप देते हैं तो उससे) वा (एवं) कालमृत्युभयात् (कालमृत्यु भय से) अपि (भी) गुरुः (गुरु) रक्षति (रक्षा करते हैं)।।६१।।

अर्थ – हे पार्वति मुनिगण अथवा सब सर्प या देवसमूह भी यदि शाप देते है तो उससे और कालमृत्यु भयसे भी गुरु रक्षा करते है।।६१।।

अशक्ता हि सुराः सर्वे अशक्ता मुनयस्तथा।
गुरुशापहताः क्षीणा क्षयं यान्ति न संशयः।।६२।।

अन्वय – हि (किन्तु) गुरुशापहताः (गुरु शाप ग्रस्त) क्षीणाः (दुर्बल की रक्षा करने में) सर्वे (सब) सुराः (देवगण) अशक्ताः (अशक्त) तथा (एवं) मुनयः (मुनि मण्डली) अशक्ता (अशक्त)

होते हैं स: (वह व्यक्ति) न संशय; (निश्चय) क्षयम् (क्षय को) (यान्ति) प्राप्त होता है)॥६२॥

अर्थ – लेकिन गुरुशापग्रस्त क्षीण की रक्षा करने में सब देवगण अशक्त होते हैं और मुनि मण्डली भी अशक्त होती है और वह व्यक्ति निश्चय क्षय प्राप्त होता है॥६२॥

मन्त्रराजामिदं देवि गुरुरित्यक्षरद्वयम्।
श्रुति-वेदान्तवाक्येन गुरुः साक्षात् परं पदम्॥६३॥

अन्वय – देवि (हे देवि) गुरु (गुरु) इति (यह) अक्षरद्वयम् (दो अक्षर) इदम् (यह) मन्त्रराजम् (मंत्रराज) श्रुति-वेदान्त वाक्येन (श्रुति और वेदान्त वाक्य द्वारा जाना जाता है) गुरुः (गुरु) साक्षात् (प्रत्यक्ष) परमपदम् (सच्चिदानन्दघन परमात्मा ओंकार हैं)॥६३॥

अर्थ – हे देवि! 'गुरु' ये दो अक्षर मंत्रराज हैं; श्रुति और वेदान्त से जाना जाता है कि गुरु ही सच्चिदानन्दघन परमात्मा ओंकार हैं॥६३॥

श्रुतिस्मृतिमविज्ञाय केवलं गुरुसेवया।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेशधारिणः॥६४॥

अन्वय – (जो लोग) श्रुतिस्मृतिम् (वेद और स्मृति शास्त्र) अविज्ञाय (नहीं जानकर) गुरुसेवया (गुरु सेवा द्वारा) केवलम् (शुद्ध हुए हैं) ते वै (वे ही लोग) संन्यासिनः (संन्यासी) प्रोक्ताः (कहलाते हैं) इतरे (गुरुसेवाहीन संन्यासीगण) वेशधारिणः (मात्र वेशधारी हैं)॥६४॥

अर्थ – जो लोग श्रुति स्मृति नहीं जानकर गुरु सेवा द्वार

शुद्ध हुए हैं, वे ही लोग प्रकृत संन्यासी कहलाते हैं, गुरु सेवाहीन संन्यासी मात्र वेशधारी हैं।।६४।।

गुरुकृपाप्रसादेन आत्मारामो हि लभ्यते।
अनेन गुरुमार्गेण आत्मज्ञानं प्रवर्तते।।६५।।

अन्वय – (मानव) गुरुकृपाप्रसादेन (गुरुकृपा प्रसाद से) हि (निश्चय) आत्माराम: (सच्चिदानन्दघन प्रणवात्मा को) लभ्यते (लाभ करता है) अनेन (इस) गुरुमार्गेण (गुरुमार्ग से) आत्मज्ञानम् (आत्मज्ञान) प्रवर्तते (प्रवर्तित होता है।)।।६५।।

("मैं सारा विश्व हूँ" "मैं अच्युत परमात्मा हूँ" और दूसरा कुछ नहीं हूँ, यह परम अहंकार की बात है। "देहादिसंघात् पदार्थ का अतीत और केशाग्र से भी मैं सूक्ष्म हूँ" यह द्वितीय अहंकार है, यह मोक्ष के निमित्त होता है – जीवनमुक्त लोगों को यह अहंकार रहता है। "हस्तपदयुक्त मैं हूँ" यह तीसरा लौकिक तुच्छ अहंकार है, इसका नाम देहात्माभिमान है। मनुष्य गुरु कृपा से प्राप्त सगुण मंत्र उपासना से सिद्धिलाभ करके ज्योतिर्मय प्रणव लाभ करके जीवन्मुक्त होता है।

यह प्रणव ही परमात्मा और प्रणव-स्पन्दन नाद परमात्मा से भिन्न नहीं है। स्पन्दन और नाद परमात्मा प्रणव की शक्ति है, शक्ति और शक्तिमान में कोई प्रभेद नहीं है। अनन्तर स्पन्दन शून्य होकर – "मैं सच्चिदानन्दघन परमात्मा पर प्रणव हूँ इस ज्ञान लाभ से कृतार्थ होता है।।६५।।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं परमात्मस्वरूपकम्।
स्थावरं जङ्गमं चैब प्रणमामि जगन्मयम्।।६६।।

अन्वय – आब्रह्ममस्तम्बपर्यन्तम् (ब्रह्मा से तृणगुच्छ तक) च (और) स्थावरम् (पर्वतादि) एव (एवं) जंगमम् (गतिशील मानव आदि) जगन्मयम (जगत्मय) परमात्मस्वरूपकम् (परमात्मा स्वरूप) (गुरु को) प्रणमामि (प्रणाम करता हूँ)।।६६।।

अर्थ – ब्रह्मा से तृण गुच्छ पर्यन्त और पर्वत आदि स्थिति शील और मानव आदि गतिशील जगन्मय परमात्मा स्वरूप गुरु को प्रणाम करता हूँ।।६६।।

नित्यपूर्णं निराकारं निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम्।।६७।।
परात्परतरं ध्येयं नित्यंमानन्दकारकम्।
हृदयाकाशमध्यस्थं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।।६८।।
अंगुष्ठमात्रं पुरूषं ध्यायते चिन्मयं हृदि।
अतत्र स्फुरति यो भावः शृणु तं कथयाम्यहम्।।६९।।

अन्वय – नित्यपूर्णम् (नित्य पूर्ण) निराकारम् (आकार शून्य) निर्गुणम् (निर्गुण) स्वात्मसंस्थितम् (अपने आत्मा में स्थित) नित्यम् (नित्य) आनन्दकारकम् (आनन्दकारक) हृदयाकाशमध्यस्थम् (हृदयाकाश के मध्य स्थित) शुद्धस्फटिकसन्निभम् (विशुद्ध स्फटिक मणि सदृश) चिन्मयम् (चैतन्यमय) अंगुष्ठमात्र पुरुषम् (अंगुष्ठ मात्र पुरुष को) हृदि (हृदय में) ध्यायते (ध्यान करना चाहिए) तत्र (उस ध्यान के समय) यो भावः (जो भाव) स्फुरति (उदय होता है) तम् (वह) कथयामि (कहता हूँ) शृणु (श्रवण करो)।।६७-६९।।

अर्थ – नित्यपूर्ण, आकारशून्य, सत्व आदि गुण विहीन, अपने आत्मा में अवस्थित, नित्य, आनन्दकारक, हृदयाकाश मध्यस्थित, विशुद्ध स्फटिक मणि सदृश, अंगुष्ठमात्र पुरुष गुरुदेव को हृदय में ध्यान करना चाहिए। उस ध्यान काल में जो भाव प्रकाशित होता है वह मैं कहता हूँ, श्रवण करो।।६७-६९।।

अगोचरं तथागम्यं रूपनामादिवर्जितम्।
निःशब्दं तं विजानीयात् स भावो ब्रह्म पार्वति।।७०।।

अन्वय– पार्वति (हे पार्वति) अगोचरम् (इन्द्रियों का अगोचर) तथा (एवं) अगम्यम् (बुद्धि से अगम्य) रूपनामादि वर्जितम् (रूप नाम आदि वर्जित) निःशब्दम् (शब्दशून्य) तम् (उस स्थिति को) विजानीयात् (जानो) सः (वह) भावः (भाव) ब्रह्म (ब्रह्म है)।।७०।।

अर्थ – हे पार्वती! इन्द्रियों का अगोचर, बुद्धि का अगम्य, रूप-नाम आदि वर्जित, शब्दशून्य उस भाव अर्थात स्थिति को विशेष रूप से जानना चाहिए, वही ब्रह्म भाव है।।७०।।

(हृदयस्थित ज्योतिर्मय अंगुष्ठमात्र पुरुष को ध्यान करते करते क्रम-क्रम से नाद और ज्योति में मन का लय हो जाता है।)

अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनियं उपलभ्यते।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्ञेयं ज्ञेयस्यान्तर्गतं मनः।।
मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमपदम।।

अनाहत ध्वनि के अन्तर्गत ज्योति है और ज्योति के अन्तर्गत ज्योति, आकार में आकारित अन्तःकरण है, मन का उस ज्योति में लय होता है, वही ज्योति परमात्मा ओंकार का स्वरूप है। अनाहत

ध्वनि जब तक रहती है तब तक आकाश संकल्प रहता है, नि:शब्द होने पर वही परब्रह्म परमात्मा ओंकार हो जाती है।।७०।।

यथा निजस्वभावेन कर्पूरकुंकुमादिकम्।
शीतोष्णादिस्वभावेन यथा ब्रह्म च शाश्वतम्।।७१।।

अन्वय – यथा (जिस प्रकार) निजस्वभावेन (अपने स्वभाव के कारण) कर्पूरकुंकुमादिकम् (कर्पूर और कुंकुम आदि) शीतोष्णादिस्वभावेन (शीत उष्ण आदि स्वभावत: ऋतु परिवर्तन में उपस्थित होता है) च (और) यथा (जैसे) (स्वभावत:) ब्रह्म (ब्रह्म ओंकार शाश्वतम् (नित्य) है।।७१।।

अर्थ – जिस प्रकार अपने स्वभाव के वश कर्पूर कुंकुम आदि युग युक्त होते हैं, जिस प्रकार स्वभावत: शीतोष्णादि ऋतुपरिवर्तन होने पर उपस्थित होता है, जिस प्रकार स्वभावत: ब्रह्म नित्य है।।७१।।

गुरुध्यानात् तथा नित्यं देही ब्रह्ममयो भवेत्।
पिण्डे पदे तथा रूपे मुक्तास्ते नात्र संशय:।।७२।।

अन्वय – तथा (उस प्रकार) देही (देही) नित्यम् (सतत) गुरुध्यानात् (गुरु ध्यान से) ब्रह्ममय: (ब्रह्मय) भवेत् (होता है) ते (वे) पिण्डे (पिण्ड में) तथा और रूपे (रूप में) मुक्ता: (मुक्त) अत्र (इसमें) संशय: (संशय) न (नहीं)।।७२।।

अर्थ – उसी प्रकार देही सतत गुरुदेव के ध्यान से ब्रह्ममय हो जाता है; वे लोग पिण्ड, पद और रूप में मुक्त हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।।७२।।

श्री पार्वत्युवाच –

पिण्डं किं तन्महादेव पदम् किं समुदाहृतम्।
रूपं च रूपातीतं च एकदाख्याहि शंकरः।।७३।।

अन्वय – श्री पार्वती बोली – शंकर (हे मंगलमय) महादेव (महादेव) तत् (वह) पिण्डम् (पिण्ड) किम् (क्या है) किम् (किसको) पदम (पद) समुदाहृतम् (कहा जाता है) च (और) रूपम् (रूप) च (एवं) रूपातीतम् (रूपातीत) किम् (क्या है) एतत् (यह मुझको) आख्याहि (कहें)।।७३।।

अर्थ – श्री पार्वती बोली – हे मंगलमय महादेव! वह पिण्ड क्या है और पद किसको कहा जाता है? रूप और रूपातीत क्या है? यह सब मुझको कहें।।७३।।

श्री शंकर उवाच –

पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः पदं हंसमुदाहृतम्।
रूपं विन्दुरिति ज्ञेयं रूपातीतं निरञ्जनम्।।७४।।

अन्वय – कुण्डलिनी (कुण्डलिनी) शक्तिः (शक्ति) पिण्डम् (पिण्ड) है, पदम् (पद को) हंसम् (हंस जीवात्मा) उदाहृतम् (कहा जाता है), रूपम् (रूप) विन्दुः (विन्दु) (हे), रूपातीतम् (रूपातीत) निरंजनम् (निरंजन परब्रह्म) (है) इति ज्ञेयम् (यह ज्ञातव्य है)।।७४।।

अर्थ – श्री शंकर बोले – पिण्ड कुण्डलिनी शक्ति है, पद को हंस जीवात्मा कहा जाता है, रूप बिन्दु अर्थात् ज्योति है, रूपातीत को निरंजन परब्रह्म जानो।।७४।।

सर्पाकारा ज्योतिर्मयी कुण्डलिनी शक्ति परमा कला – "सर्पाकारा कुण्डलिनी या देवी परमा कला शक्तिः कुण्डलिनी गुणत्रयं वपुः। – शारदा तिलक

कुण्डलिनी शक्ति सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों की देह है,. इस कारण वह पिण्ड है और हंस है जीवात्मा –

"जीवे राज्ञि रवौ धर्मे तपस्विनि तुरंगमे।
सिते पक्षीविशेषे च हंस शब्दी विधीयते।।

अथवा

हुंकारो बिन्दुरित्युक्तो विसर्गः स इति स्मृतः।
बिन्दुः पुरूष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृति स्मृतः।।
पुंप्रकृत्यात्मकों हंसस्तदात्मकमिदं जगत्।।

– तन्त्रसार

"पुरुष प्रकृति हंस"

बिन्दु-ब्रह्म सकृदृष्ट्वा मनस्तत्र नियोजयेत्।
स्वयमेव च संपश्येद् देहे बिन्दुश्च निष्कलम्।।

– शारदा तिलक

बिन्दु-ब्रह्म एक बार देखकर उसमें मन नियोजित करो। साधक स्वयं अपनी देह में निरंश बिन्दु को देखता है।

बालुकायाः सहस्त्रैकभागो बिन्दुः दुर्लभः।

– तोडल तन्त्र

एक बालुकण का सहस्त्रांश बिन्दु दुर्लभ है।

निरञ्जन अर्थात अविद्यारूपी अज्ञान-काजल विहीन परम व्योम्, परबह्म, सच्चिदानन्दघन ओंकार।

अथवा

पिण्ड भवेत् कुण्डलिनी शिवात्मापदं तु हंसः सकलान्तरात्मा रूपं स्मृतं विन्दुः अमन्दकान्तिरतीवरूपं शिवसामरस्य।। – तन्त्रसार

शिवमयी कुण्डलिनी शक्ति पिण्ड है, सबका अन्तरात्मा हंस ही पद है, विन्दु ही अत्युज्ज्वल रूप है, अतएव शिवसामरस्य (शिव के साथ अभेद भाव) अतीत आश्चर्य है।

अथवा

पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः पदाम् हंसः प्रकीर्तितः।
रूपं बिन्दु वरारोहे ध्यानमेर न संशयः।।
महाकुण्डलिनी शक्ति यो भजेत् भुजंगिनीम्।
स कृतार्थः स धन्यश्च स दिव्यवीरसत्तमः।।

– मुण्डमाला तन्त्र पंचम पटल

कुण्डलिनी की व्याख्या –

देह मध्ये ब्रह्मनाडी सुषम्ना सूर्यरूपिणी चन्द्राभा वर्तते, सा तु मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रगामिनी भवति, तन्मध्ये तडित्कोटि-समानकान्त्या मृणालतन्तुवत् सूक्ष्मांगि कुण्डलिनी ति प्रसिद्धास्ति, तां दृष्ट्वा मनसैव नरः सर्वपापविनाशद्वारा मुक्तो भवति।

– अद्वयतारकोपनिषद्

देह के भीतर सूर्यस्वरूपिणी चन्द्र के समान प्रभायुक्त ब्रह्मनाडी सुषुम्ना है, वह मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक गई है, उसके भीतर कोटि

विद्युत समान कान्तियुक्त मृणालतन्तु के सदृश सूक्ष्मांगी कुण्डलिनी नाम की प्रसिद्ध शक्ति है, मन द्वारा उसके दर्शन करने पर मानव सब पापों का विनाश कर मुक्त हो जाता है।

सुप्ता नागोपमा स्फुरन्ती प्रभया स्वया।
अहिवत् सान्धिसंस्थाना वाक्देवी बीजसंगकाः।।

– शिव संहिता

कुण्डलिनी प्रसुप्त नागिनी का आकार धारणपूर्वक अपनी प्रभा से देदीप्यमान होकर सो रही है। इसके सारे शरीर का आकार सर्प के सदृश है, यह वाक्देवी है। इसी से सबकी वाक्य स्फूर्ति होती है। यह वर्णमयी अर्थात समग्र बीजमन्त्र स्वरूपा है।

चैत्न्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति में मतम्।
तत् प्राप्य कुण्डलिनीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।।
वर्णात्मनाविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः।।

– शारदा तिलक

सर्वभूत का चैतन्य शब्द ब्रह्म है। वह कुंडलिनी का रूप प्राप्त होकर प्राणिगण की देह के भीतर अवस्थान करता है। गद्य-पद्य आदि के भेद से वर्णात्मक रूप से आविर्भूत होता है।

ततश्चैतन्यरूपा सा सर्वगा विश्वरूपिणी।
शिवसन्निधिमागत्य नित्यानन्दगुणोदय।।

– शारदा तिलक

वह चैतन्यरूपिणी, विश्वरूपा, नित्यानन्द-गुणप्रकाशिनी (कुण्डलिनी) शिवसन्निधान में आकर अवस्थान करती है।

योगिनां हृदयाम्भोजे नृत्यन्ती नित्यमञ्जसा।
आधारे सर्वभूतानां स्फुरन्ती विद्युताकृतिः।।
शंखावर्तक्रमाद्देवि सर्वमावृत्य तिष्ठति।
कुण्डलीभूतसर्पानामंगश्रियमुपेयुषी ।।
सर्ववेदमयी देवी सर्वमन्त्रमयी शिवा।
सर्वतत्वमयी साक्षात् सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरा विभुः।।
त्रिधामजननी देवी शब्दब्रह्मस्वरूपिणी।
द्विचत्वरिंशद्वर्णात्मा पञ्चाशत्वर्णरूपिणी।।
गुणिता सर्वगात्रेण कुण्डली परदेवता।
विश्वात्मना प्रबुद्धा सा सूते वर्णमयं जगत्।।

वे योगिगण के हृदयपद्म में साक्षात् भाव से नित्य नृत्य करती हैं। सब भूतों के मूलाधार में विद्युत आकार से देदीप्यमान होती है।

शंख के भीतर का आवर्त जिस तरह शंख को आवृत करके अवस्थान करता है, उसी तरह ये भी शिव को आवृत करके स्थित है। कुण्डलीभूत सर्प के शरीर शोभासम्पन्न है।

ये सर्ववेदमयी देवी, सर्वमन्त्रमयी शिवा, साक्षात् सर्वतत्वमयी,. सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतरा, चन्द्रसूर्याग्निरूपा है।

त्रिधामजननी शब्दब्रह्मस्वरूपिणी देवी ये द्विचत्वारिशंद् भूत वे लिपिमयी (अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ, ह, य, व, र, ल, ङ, क, ख, घ, ग, ञ, च, छ, झ, ज, ण, ट, ठ, ढ, ड, न, त, थ, ध, द, म, प, फ, ब, श, ष, स) और पञ्चाशत् मातृकावर्णमयी है।

विश्वात्मा द्वारा प्रबुद्ध होकर परदेवी कुण्डलिनी सब वर्णों के साथ परस्पर मिलकर मंत्रमय जगत् प्रकाशित करती हैं।

सर्पाकार कुण्डलिनी या देवी परमा कला।
सर्पाकारा कुण्डलिनी या शक्तिः परमा कला।।

शक्तिः कुण्डलिनी गुणत्रवपुः। इस कुण्डलिनी शक्ति की देह सत्व, रज, तम गुणत्रय है। यह कुण्डलिनी-शक्ति प्राण, सूत्रात्मा (ब्रह्मा) हिरण्यगर्भ अपरप्रणव, माया, प्रकृति, प्राणशक्ति, दुर्गा, सीता, राधा इत्यादि नाम से वर्णित होती हैं। ये ही जीव के स्थूल सूक्ष्म और कारण देहरूपिणी हैं। इस कारण श्री भगवान शंकर देव ने इन्हें पिण्ड कहा।

साम्यावस्था में ये ही विद्या है, वैषम्य अवस्था में ये ही अविद्या हैं ये ही परा और ये ही अपरा हैं।

ये मूलाधार में ब्रह्मद्वार रोककर निद्रिता रहती हैं। गुरुकृपा से इनके जागरित होने पर जीवन का आवागमन मिटता हैं।

पूज्यपाद गुरुदेव का एक गीत यहाँ उद्धृत किया जाता है –

जागो मा जगज्जननि तारिणि।
तुमि ना जागिले शिवे, बल किंवा फल हवे,
विफले बहिया जाये जीवन रजनी।।
मूलाधारे ज्योतिरूपा, शिवालये आछ शुये,
अधम तनय डाके, बारेक न देख चेये।
सार्द्धत्रिवलयाकारे, शंकरे आछो मा घिरे,
चारिदल कमलेते चञ्चलारूपिणी।।

विफल पूजा जप घुमाये थाकिले तुमि,
कतबार घुरितेछि ताई मा जठरभूमि,
निलाम शरण मागो रातुल चरणे तव,
जामिया तार मा तारा, ना आसिते दिनर्माण।

सोऽहं सर्वमयो भूत्वा परं ब्रह्म विलोकयेत्।
परात्परतरं नान्यत् सर्वमेव निरामयम्।।७५।।

अन्वय – अहम् (मैं) सर्वमय: (सर्वमय) स: (वह) इति (इस रूप में) भूत्वा (होकर) परं ब्रह्म (परं ब्रह्म ओंकार को) विलोकयेत् (दर्शन करना चाहिए) परात् (पर-प्रणव से) परतर: (श्रेष्ठतर) न अन्यत् (दूसरा कुछ नहीं है) सर्वम् (सब) एव (ही) निरामयम् (निरामय)।।७५।।

अर्थ – "मैं सर्वमय वह ओंकार ब्रह्म" इस प्रकार होकर परब्रह्म ओंकार के दर्शन करोगी। उस परप्रणव से श्रेष्ठतर अन्य कुछ नहीं है, सभी निरामय अर्थात निरो, द्वैत-शून्य हैं।।७५।।

(बहुदर्शन ही रोग है। पहले ओंकार-ब्रह्म की शक्ति प्राणस्पंदन में स्थूल-सूक्ष्म सब प्रकार के रूप धारण कर अवस्थान करती है, इस प्रकार सर्वत्र अभ्यास करते करते "एक ओंकार नाद ही सब रूप धारण करके लीला करते है" यह ज्ञान लाभ होता है, तब बहुदर्शन रोग दूर हो जाता है। तद्नन्तर "वही मैं सर्वमय" इस ध्यान से द्वितीय का अस्तित्व नहीं रहता है, तब साधक स्वस्थ होकर जन्म-मरण-संकुल संसार सागर से उत्तीर्ण हो जाते है।।७५।।

यस्यावलोकनादेव सर्वसंग विवर्जित:।
एकान्तनिस्पृह: शान्तस्ततक्षणात् भवति प्रिये।।७६।।

अन्वय – प्रिये (हे प्रिये) यस्य (जिनका अवलोकनात् एव (दर्शन मात्र ही) तत्क्षणात् (तत्क्षण) सर्वसंग विवर्जितः (सर्वसंगशून्य) एकान्तनिस्पृहः (अत्यन्त स्पृहाहीन) (एवं) शान्तः (शान्त) भवति (होता है)॥७६॥

अर्थ – हे प्रिये! जिनके परम ब्रह्म ओंकार के दर्शन मात्र से ही साधक तत्क्षण सर्वसंगशून्य, अत्यन्त स्पृहाहीन और शान्त हो जाता है॥७६॥

(जब साधक गुरु कृपा से अपने आत्मा ज्योतिर्मय प्रणव में परमात्मा-प्रणव के दर्शन से एकीभूत हो जाते हैं तब दूसरा कुछ नहीं रह जाता है और वे सर्वसंगशून्य, स्पृहाहीन और शान्त हो जाते हैं। दूसरा कुछ नहीं है तो किसके साथ संग करेंगे और क्या स्पृहा करेंगे? वे अधिदैविक सूर्य-चन्द्र आदि में, आधिभौतिक मानव, पशु-पक्षी, वृक्ष-लता आदि में एवं आध्यात्मिक अपने चक्षु, कर्ण आदि इन्द्रियों का कारण एक मात्र प्रणव-स्पन्दन है, यह प्रत्यक्ष करके ओंकार-नाद में निमग्न होकर मुक्त हो जाते हैं। जब तक देह रहती है तब तक नाद और ज्योति में उनका मन क्रीड़ा करता है। यद्यपि वे देहधारी दिखते हैं तथापि सर्वदा नाद के साथ अवस्थान करने के कारण वे आकाश होकर (अर्थात निर्लिप्त भाव से) अवस्थान करते हैं॥७६॥

लब्धं वाथ न लब्धं वा स्वल्पं वा बहुलं तथा।
निष्कामैरेव भोक्तव्यं सदा सन्तुष्टमानसैः॥७७॥

अन्वय – अथ (अनन्तर) लब्धम् (प्राप्त) वा (अथवा) न लब्धम्

(अप्राप्त) वा (किंवा) स्वल्पम् (अल्प) तथा (उसी तरह) बहुलम् (अनेक प्राप्त) सदा (सर्वदा) सन्तुष्टमानसैः (सन्तुष्ट मन से) निष्कामैः (निष्काम भाव से) एव (ही) भोक्तव्यम् (भोग करता है॥७७॥

अर्थ – अनन्तर वे ब्रह्मज्ञ व्यक्ति, प्राप्त अथवा अप्राप्त किंवा अल्प या बहुल योग्य वस्तु पाकर भी सन्तुष्ट मन से और निष्काम भाव से ही भोग करते हैं॥७७॥

सदानन्दः सदा शान्तो रमते यत्र कुत्रचित्।
यत्रैव तिष्ठते सोऽपि स देशः पुण्यभाजनः॥७८॥

अन्वय – सदानन्दः (सदानन्द) सदा (सर्वदा) शान्तः (शान्त) सः (वे मुक्त पुरुष) यत्र कुत्रचित् (जिस किसी भी स्थान में) रमते (आनन्दित रहते हैं) यत्र (जिस स्थान में) एव (ही) तिष्ठते (वास करते हैं) सः (वह) देशः अपि (भी) पुण्यभाजनः (पुण्य का आधार अर्थात् पुण्यक्षेत्र) (होता है)॥७८॥

अर्थ – सदानन्दमय, सर्वदा शान्त, वे मुक्त पुरुष जिस किसी स्थान में आनन्दित रहते हैं और वे जिस किसी भी स्थान में वास करते हैं, वह देश भी पुण्य का आधार अर्थात पुण्यक्षेत्र हो जाता है॥७८॥

मुक्तस्य लक्षणं देवि तवाग्रे कथितं मया।
उपदेशो मया देवि गुरुमार्गेण दर्शितः॥७९॥

अन्वय – देवि (हे देवि) मया (मैंने) मुक्तस्य (मुक्त पुरुष का) लक्षणम् (लक्षण) कथितम् (कहा), देवि (हे देवि) (अयं-यह) उपदेश (उपदेश) तव (तुम्हारे) अग्रे (निकट) गुरुमार्गेण (गुरुमार्गानुसार) दर्शितः (प्रदान किया है)॥७९॥

अर्थ – हे देवि, मैंने मुक्त पुरुष का लक्षण तुम्हारे निकट कहा। यह उपदेश मैंने गुरुमार्गानुसार प्रदान किया है।।७९।।

(पहले कहा गया है कि भक्त तीन प्रकार के होते हैं; भगवत्सेवी, भक्तसेवी और गुरुसेवी। उनमें जिन लोगों ने गुरु सेवा का पथ ग्रहण किया है, उन्हीं के लिए यह उपदेश है।।७९।।

गुरुभक्तिस्तथाध्यानं सकलं तव कीर्तितम्।
अनेन यद् भवेत्, कार्य तद्वदामि महातपः।।८०।।

अन्वय – गुरुभक्तिः (गुरुभक्ति) तथा (एवं) ध्यानम् (गुरु ध्यान) सकलम् (सब) तव (तुम्हारे पास) कीर्तितम् (कहा है) अनेन (इसके द्वारा) यत् (जो) कार्यम् (कार्य) भवेत् (होता है) तत् (वह) महातपः (महा धर्म) वदामि (कहता हूँ)।।८०।।

अर्थ – गुरु भक्ति और गुरु ध्यान सब तुमसे कहा है। इसके द्वारा जो कार्य होता है वह महाधर्म अब मैं कहता हूँ।।८०।।

लोकोपकारकं देवि लौकिकन्तु न भावयेत्।
लौकिकात् कर्मणो यान्ति ज्ञानहीना भवार्णव।।८१।।

अन्वय – देवी (हे देवि) लोकोपकारकम् (यह लोकोपकारक है) तु (किन्तु) लौकिकम् (सांसारिक) न भावयेत् (मत सोचो) ज्ञानहीनाः (ज्ञानहीन लोग) लौकिकात् (लौकिक) कर्मणः (कर्म के कारण) भवार्णवे (संसार समुद्र में) यान्ति (यातायात करते हैं)।।८१।।

अर्थ – हे देवि! यह उपदेश लोकोपकारक है, लेकिन इसे सांसारिक मत सोचो (अर्थात् इसके द्वारा सांसारिक उन्नति की चेष्टा

नहीं करो) ज्ञानहीन लोग नश्वर लौकिक कर्मानुष्ठान के कारण संसार समुद्र में बार-बार यातायात करते हैं॥८१॥

इदन्तु भक्तिभावेन पठ्यते श्रूयतेऽथवा।
लिखित्वा वा प्रदीयेत सर्वकामफलप्रदम्॥८२॥

अन्वय – तु (और) इदम् (यह गुरुगीता ग्रन्थ) भक्तिभावेन (भक्तिभाव से) पठ्यते (पाठ करने से) अथवा (अथवा) श्रूयते (श्रवण करने से) किंवा (या) लिखित्वा (लिखकर) प्रदीयेत (प्रदान करने से) सर्वकामफलप्रदम् (सब वांछित फल प्रदान करती है)॥८२॥

अर्थ – यह गुरुगीता ग्रन्थरत्न भक्तिभाव से पाठ करने से अथवा श्रवण करने से अथवा लिख कर देने से यह सब वांछित फल प्रदान करता है॥८२॥

गुरुगीताभिधं देवि शुद्धं तत्वं मयोदितम्।
भवव्याधिविनाशार्थं स्वयमेव सदा जपेत्॥८३॥

अन्वय – देवी (हे देवि) गुरुगीताभिधम् (गुरुगीता नामक) मया (मेरा) उदितम् (कथित्) शुद्धम् (शुद्ध) तत्त्वम् (तत्व) भवव्याधि विनाशार्थम् (भवरोग विनाश के लिए) स्वयमेव (स्वयं ही) सदा (सर्वदा) जपेत् (जप करेगी)॥८३॥

अर्थ – हे देवि! यह गुरुगीता नामक मेरा कथित शुद्ध तत्व भवरोग विनाश के लिए तुम स्वयं ही सदा जप करोगी॥८३॥

गुरुगीताक्षरैकेकं मन्त्रराजमिदं प्रिये।
अनया विविधाः मन्त्राः कलां नार्हन्ति षोड्शीम्॥८४॥

अन्वय – प्रिये (हे प्रिये) गुरुगीता-अक्षर-एक-एकम्

(गुरुगीता का एक एक अक्षर) मन्त्रराजम् (श्रेष्ठ मंत्र है) विविधा: (विविधा) मन्त्रा: (मन्त्र समूह) अनया षोडशीकलाम् (इसके सोलह भागों में से एक के) न अर्हन्ति (योग्य नहीं हैं)॥८४॥

अर्थ – हे प्रिये! इस गुरुगीता का एक एक अक्षर श्रेष्ठ मंत्र है। अन्य विविध मंत्र सकल इसके सोलह भागों में से एक के कभी समान नहीं है॥८४॥

सर्वपापप्रशमनं सर्वदारिद्र्यनाशनम्।
अकालमृत्युहरणं सर्वसंकटनाशनम्॥८५॥

अन्वय – (यह ग्रंथ रत्न) सर्वपापप्रशमनम् (समस्त पापों का प्रशमन करता है) सर्वदारिद्र्यनाशनम (सब दारिद्र्य नाश करता है) अकालमृत्युहरणम् (अकाल मृत्यु निवारण करता है) सर्वसंकट-नाशनम् (सर्व संकटमोचन करता है)॥८५॥

अर्थ – ग्रन्थरत्न सब पाप और दारिद्र्य का नाश करता है, अकालमृत्यु निवारण करता है और सर्व संकटमोचन करता है॥८५॥

यक्ष-राक्षस भूतानां चोर-व्याघ्र भयापहम्।
महाव्याधिहरंचैव विभूतिसिद्धिदं भवेत्॥८६॥

अन्वय – (यह गुरुगीता ग्रन्थरत्न) यक्ष-राक्षस-भूतानाम् (यक्ष राक्षस भूतों का) च (और) चोर व्याघ्र (चोर और बाघ आदि का) भयापहम् (भय नष्ट करता है) एव (और) महाव्याधिहरम् (महाव्याधि विनाशक) विभूतिसिद्धिदम् (विभूति सिद्धिप्रद) भवेत् (होता है)॥८६॥

अर्थ – यह गुरुगीता ग्रन्थरत्न यक्ष, राक्षस, भूतगण, चोर

और बाघ आदि का भय नष्ट करता है एवं महाव्याधिनाशक और विभूति सिद्धिप्रद होता है॥८६॥

दैहिक विभूति सिद्धि तीन प्रकार की है –

१. अणिमा – परमाणु तुल्य सूक्ष्म देह धारण सामर्थ्य,
२. महिमा – देह को इच्छानुसार बढ़ाने की शक्ति,
३. लघिमा – देह को अतिशय हल्का करने की क्षमता।

इन्द्रिय सिद्धि दो प्रकार की होती है –

१. प्राप्ति – विश्व का सब द्रव्य करतलगत करने की क्षमता,
२. प्राकाम्य – जो देखा जाता है और जो सुना जाता है इस प्रकार सारे पदार्थों का भोग और दर्शन का सामर्थ्य लाभ।

मानसिक सिद्धि तीन प्रकार की होती है –

१. ईशित्व – सबके ऊपर प्रभुत्व करने की क्षमता प्राप्त होना।
२. वशित्व – सबको अपने वश में रखने का सामर्थ्य लाभ करना।
३. कामावसायित्व – सब प्रकारों की इच्छा पूर्ण करके निष्काम होना।

ये अष्ट सिद्धि भी मन का कार्य है। सिद्धियों को तुच्छ कर पाने पर ब्रह्मज्ञान लाभ होता है। ब्रह्मज्ञानी की ये सिद्धियाँ सेवा करती है॥८६॥

मोहनं सर्वभूतानां बन्धनों मोचकं परम्।
देवभूपप्रियकरं लोकानां वशमानयेत्॥८७॥

अन्वय – परम (केवल) (इसका पठन) सर्वभूतानाम्

(सर्व भूत का) मोहनम् (मोहजनक) बन्धने (बन्धन में) मोचकम् (मुक्तिप्रदायक) देवभूपप्रियकरम् (देवता और नृपति का प्रियकर) लोकानाम् (लोगों का) वशम् (वश में) आनयेत् (लाने में समर्थ है)॥८७॥

अर्थ – केवल इसका पठन सब भूतों के मोहजनक बन्धन से मुक्तिप्रदायक है, देवों और नृपतियों का प्रियकर है और लोगों को वश में लाने में समर्थ है॥८७॥

मुखस्तम्भकरं नृणां सद्गुणानां विवर्धनम्।
दुष्कर्मनाशनं चैवसत्कर्मसिद्धिदं भवेत्॥८८॥

अन्वय – (यह गुरुगीता ग्रन्थरत्न) नृणाम् (मानवगण का) मुखस्तम्भकरम् (मुखस्तम्भन करता है) सद्गुणानाम् (सद्गुणों का) विवर्धनम् (विशेष रूपसे वर्धन करता है) च (और) दुष्कर्मनाशनम् (दुष्कर्मनाशक) एव (एवं) सत्कर्मसिद्धिदम् (सत्कर्मसिद्धप्रद) भवेत् (होता है)॥८८॥

अर्थ – यह गुरुगीता ग्रन्थरत्न मानवगण का मुखस्तम्भन (बन्द) करता है, सद्गुणों का विशेष रूप से वर्धन करता है; यह दुष्कर्मनाशक और सत्कर्म सिद्धिप्रद है॥८८॥

भक्तिदं सिद्धयेत् कार्य नवग्रहभयापहम्।
दुःस्वप्ननाशनंचैव सुस्वप्नानां प्रदर्शकम्॥८९॥

अन्वय – (यह ग्रन्थ रत्न) भक्तिदम् (भक्ति दान करता है) कार्यम् (कार्य) सिद्धयेत् (सिद्ध करता है) नवग्रहभयापहम् (नवग्रह भय नाशक) च (और) दुःस्वप्ननाशनम् (दुःस्वप्न नाशक है) एव (एवं) सुस्वप्नानाम् (सुस्वप्नों का) प्रदर्शकम् (प्रदर्शक है)॥८९॥

अर्थ – यह ग्रन्थरत्न भक्तिदान और कार्यसिद्धि करता है और यह नवग्रहभय और दु:स्वप्न नाशक और सुस्वप्नों का प्रदर्शक है॥८९॥

सर्वशान्तिकरं नित्यं बन्ध्यापुत्रफलप्रदम्।
अवैधव्यकरं स्त्रीणां सौभाग्यदायकं परम्॥९०॥

अन्वय – (यह ग्रन्थरत्न) नित्यम् (नित्य) सर्वशान्तिकरम् (सर्वशान्तिकर) बन्ध्यापुत्रफलप्रदम् (बन्ध्या का पुत्रफलप्रद) स्त्रीणाम (स्त्रियों का) अवैधव्यकरम् (अवैधव्यकर) परम् (श्रेष्ठ) सौभाग्यदायकम् (सौभाग्यदायक है)॥९०॥

अर्थ – यह ग्रन्थ रत्न नित्य सर्वशान्तिकर है, बन्ध्या को पुत्रफल दान करता है, स्त्रियों को वैधव्य से बचाता है और श्रेष्ठ सौभाग्यदायक है॥९०॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्रादिवर्द्धकम्।
निष्कामतस्त्रिवारं वा जपेन् मोक्षमाप्नुयात्॥९१॥

अन्वय – (यह ग्रन्थरत्न) आयु: (आयु) आरोग्यम् (आरोग्य) ऐश्वर्यम् (ऐश्वर्य) पुत्रपौत्रादि (पुत्रपौत्र आदि) वर्द्धकम् (वर्द्धक) वा (एवं) निष्कामत: (निष्काम भाव से) त्रिवारम् (तीन बार) जपेत् (पाठ करे) मोक्षम् (मोक्ष) तेन – इससे आप्नुयात् (प्राप्त होता है)॥९१॥

अर्थ – इस ग्रन्थरत्न का पाठ आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और पुत्र पौत्रादि का वर्धक है, मोक्षार्थी अगर निष्काम भाव से त्रिसन्ध्या समय तीन बार इसका पाठ करे तो मोक्ष प्राप्त करता है॥९१॥

सर्वदु:खभयं विघ्नं नाशयेत्तापहारकम्।
सर्वबाधाप्रशमनं धर्मार्थकाम मोक्षदम्॥९२॥

अन्वय – (यह ग्रन्थरत्न) सर्व दु:खभयम् (सर्व दु:ख भय) विघ्नं (विघ्न) नाशयेत् (नाश करता है) तापहारकम् (ताप हारक है) सर्वबाधाप्रशमनम् (उत्तर रूप से सब बाधाओं का नाश करने वाला है) (एवं) धर्मार्थकाममोक्षदम् (धर्म, अर्थ, काम और मोक्षप्रद है)॥९२॥

अर्थ – यह ग्रन्थरत्न सब दु:ख, भय और विघ्न का नाश और ताप हरण करता है एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करता है॥९२॥

यं यं चिन्तयते कामं तं तमाप्नोति निश्चितम्।
कामिनां कामधेनुश्च कल्पितस्य सुरद्रुमः॥९३॥

अन्वय – (इस गुरु गीता का पाठक) यं यं (जो-जो) कामम् (कामना) चिन्तयते (चिन्ता करता है) तं तं (वह-वह) (वांछित विषय) निश्चितम् (निश्चित आप्नोति (प्राप्त होता है) कामिनाम् (प्रार्थीगण की) कामधेनु: (कामधेनु) च (और) कल्पितस्य (संकल्प का) सुरद्रुम: (कल्पतरू है)॥९३॥

अर्थ – गुरु गीता पाठक जिस-जिस कामना की चिन्ता करता है वह-वह वांछित विषय निश्चित लाभ करता है। यह ग्रन्थ प्रार्थिगण की कामधेनु और संकल्प का कल्पतरू की तरह है॥९३॥

चिन्तामणिं चिन्तितस्य सर्वमंगलकारकम्।
जपेच्छाक्तश्च शैवश्च गाणपत्यश्च वैष्णवः।
सौरश्च सिद्धिदं देवि धर्मार्थकाम मोक्षदम्॥९४॥

अन्वय – देवि (हे देवि) चिन्तितस्य (आलोचना-कारी का) सर्वमंगलकारकम् (सर्व मंगल कारक) चिन्तामणिम् (चिन्तामणि) च

(एवं) सिद्धिदम् (सिद्धप्रद) धर्मार्थकाममोक्षदम (धर्म-अर्थ, काम और मोक्षप्रदायक) (इस कारण) शाक्तः शैवः (शैव) व (एवं) गाणपत्यः (गाणपत्य) वैष्णव (वैष्णव) सौर (सूर्योपासक) जपेत् (जप करें)॥९४॥

अर्थ – हे देवि! यह ग्रन्थ अपने आलोचनाकारी के लिए सर्वमंगलकारक चिन्तामणि एवं सिद्धिप्रद है, यह धर्मार्थकाम-मोक्षप्रदायक भी है – इस कारण शाक्त, शैव, गाणपत्य, वैष्णव और सूर्योपासक भी इसका जप करें॥९४॥

संसारमलनाशार्थं भवतापनिवृत्तये।
गुरुगीताम्भसि स्नानं तत्वज्ञः कुरूते सदा॥९५॥

अन्वय – तत्वज्ञः (प्रणवतत्ववित्) संसारमलनाशार्थम् (संसार मल नाश के लिए) (एवं) भवताप (भवताप) निवृत्तये (निवृत्ति के लिए) सदा (सर्वदा) गुरुगीताम्भसि (गुरुगीता रूपी जल में) स्नानम् (स्नान) कुरूते (करते हैं)॥९५॥

अर्थ – प्रणवतत्वविद् लोग संसारमल अर्थात बहुदर्शन दोष नाश और भवताप निवृत्ति के लिए इस गुरुगीता रूपी जल में सदा स्नान करते हैं॥९५॥

(श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण का अनुकरण दूसरे लोग करते हैं। अगर तत्वज्ञ लोग गुरुगीता पाठ करें तो और भी त्रिताप में तापित लोग भी इसका पाठ करेंगे। उससे उन लोगों को संसारमल नाश और भवताव निवृत्त होंगे)॥९५॥

स एव सद्गुरूर्यः स्यात् सदसद् ब्रह्मवित्तमः।
तस्य स्थानानि पवित्राणि न संशयः।।९६।।

अन्वय – यः (जो) सत् असत् (सगुण और निर्गुण) ब्रह्मवित्तमः (ब्रह्मवेत्ता अर्थात पर अपर प्रणव तत्ववित) स्यात (हैं) सएव वे भी सद्गुरुः (सद्गुरू) तस्य (उनका) सर्वाणि (सब) स्थानानि (स्थान) पवित्राणि (पवित्र) तत्र (उस विषय में) न संशयः (संशय नहीं है)।।९६।।

अर्थ – जो सगुण निर्गुण ब्रह्मवेत्ता अर्थात सगुणमंत्रोपासना द्वारा सगुण ब्रह्म को पाकर निर्गुण ब्रह्म मंत्र के साधक होते हैं और पर-अपर प्रणव तत्ववेत्ता हैं वही सद्गुरू हैं। उनके सब स्थान पवित्र हैं इसमें कोई संशय नहीं है।।९६।।

(वे जिस स्थान में वास करते हैं, वह स्थान पवित्र हो जाता है; जिस स्थान में गमन करते हैं, उसी स्थान में धर्म भाव का उदय होता है। अथवा जो सर्वत्र एक मात्र ओंकार ब्रह्म के ही दर्शन करते हैं, उनके लिए कहीं भी अपवित्र स्थान नहीं है, सब स्थान ही ब्रह्ममय विशुद्ध है।)।।९६।।

स देशः शुद्धो यत्रासौ गीता तिष्ठति दुर्लभा।
तत्र देवगणाः सर्वे क्षेत्रपीठे वसन्ति हि।।९७।।

अन्वय – यत्र (जिस देश में) असौ (वह) दुर्लभा (दुर्लभ) गीता (गीता) तिष्ठति (अवस्थान करती है) सः (वह) देशः (देश) शुद्धः (शुद्ध) तत्र (उस) क्षेत्रपीठे (सिद्धक्षेत्र पीठस्थान में) सर्वे (सब) देवगणाः (देवगण) हि (निश्चय) वसन्ति (वास करते हैं)।।९७।।

अर्थ – जिस स्थान में यह दुर्लभ गीता रहती है वह देश पवित्र है और उस सिद्धक्षेत्र पीठस्थान में सब देवता वास करते हैं।।९७।।

(गुरु गीता रहती है इसका मर्म यही है कि जिस स्थान में इसका पठन पाठन और आलोचन होते हैं वह स्थान शुद्ध हो जाता है, नहीं तो सब पुस्तकालय सिद्धक्षेत्र हो जायेंगे, क्योंकि उनमें हजारों गुरुगीता रहती हैं।)।।९७।।

शुचिरेव सदा ज्ञानी गुरुगीताजपेन तु।
तस्य दर्शनमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते।।९८।।

अन्वय – तु (ओर) ज्ञानी (ज्ञानवान) गुरुगीताजपेन (गुरुगीता पाठ द्वारा) सदा शुचिः (सर्वदा पवित्र) एवं (एवं) तस्य (उनके) दर्शनमात्रेण (दर्शन मात्र से ही) पुनर्जन्म (पुनर्जन्म) न विद्यते (नहीं होता)।।९८।।

अर्थ – और ज्ञानी गुरुगीता पाठ द्वारा सर्वदा पवित्र होते हैं; उनके दर्शन मात्र से ही पुनर्जन्म नहीं होता है।।९८।।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं निजधर्मो मयोदितः।
गुरुगीतासमो नास्ति सत्यं सत्यं वरानने।।९९।।

अन्वय – सत्यं-सत्यं (सच-सच) पुनः (पुनः) सत्यं (सच) मया (मैंने) निजधर्मः (अपना धर्म) उदितः (कहा है) वरानने (हे वरानने) गुरुगीता (गुरुगीता के) समः (समान) सत्यं-सत्यं (सचमुच ही) न अस्ति (नहीं है)।।९९।।

अर्थ – सत्य-सत्य पुनः सत्य कहता हूँ कि मैंने अपना धर्म स्वयं कहा। हे सुवदने गुरुगीता के समान सचमुच कुछ भी नहीं है।।९९।।

गुरुर्देवो गुरुर्धमो गुरोर्निष्ठा परं तपः।
गुरोः परतरं नास्ति नास्ति तत्वं गुरोः परम्।।१००।।

अन्वय – गुरुः (गुरु) देवः (देव ओंकार) गुरुः (गुरु) धर्मः (धर्म) गुरोर्निष्ठा (गुरुभक्ति) परं तपः (श्रेष्ठ तपस्या) गुरु (गुरु से) परतरम् (श्रेष्ठतर) न अस्ति (कुछ नहीं है) न अस्ति (नहीं है) गुरो; (गुरु की अपेक्षा) परम् (श्रेष्ठ) तत्वम्।।१००।।

अर्थ – गुरुदेव ज्योतिर्मय ओंकार हैं; गुरु ही श्रेष्ठ धर्म हैं और गुरु भक्ति श्रेष्ठ तपस्या है। गुरु से श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं है और गुरु की अपेक्षा परम तत्व भी नहीं है।।१००।।

धन्य माता पिता धन्यो धन्यं सर्वकुलन्तथा।
धन्या च वसुधा देवी गुरुभक्तिः सुदुर्लभा।।१०१।।

अन्वय – देवि (हे देवि) सुदुर्लभा (सुदुर्लभ) गुरुभक्तिः (गुरुभक्ति) (यस्य) (जिसे हुई हैं उसकी) माता (माता) धन्या (धन्य है) पिता (पिता) धन्यः (धन्य है) तथा (एवं) सर्वकुलम् (समस्त कुल) धन्यम् (धन्य) च (और) बसुधा धन्या (रत्नगर्भ बसुधा धन्य है।।१०१।।

अर्थ – अति दुर्लभ गुरु भक्ति जिसने पाई है उसकी माता धन्य है पिता धन्य है तथा समस्त कुल धन्य है और भक्तरत्न को धारण करके रत्नगर्भा धरणी भी धन्य है।।१०१।।

शरीरमिन्द्रियंप्राणा अर्थस्वजनबान्धवाः।
पितृमातृकुलं देवि गुरुरेव न संशय।।१०२।।

अन्वय – देवि (हे देवि) शरीर (शरीर) इन्द्रियप्राणाः (इन्द्रिय

और प्राण) अर्थस्वजनबान्धवाः (धन, स्वजन, मित्र) पितृमातृकुलम् (पितृ मातृ कुल) गुरुः (गुरु) एव (ही है) (अत्र – इस विषय में) न संशय नहीं है)॥१०२॥

अर्थ – हे देवि! शरीर इन्द्रिय (चक्षु, कर्ण, नासिका, जिव्हा, त्वक्, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) प्राण (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान) अर्थ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) आत्मीय, मित्रगण और पितृमातृ कुल ये सभी गुरु हैं। इस विषय में कोई संशय नहीं है॥१०२॥

(एकमात्र तत्व हैं ओंकार ब्रह्म, वे ही जीव उद्धार करने के लिए गुरु रूप धारण कर अवतीर्ण होते हैं। वे सगुण निर्गुण दोनों हैं यह बात पहले ही कही गई है। अब वे ही यह सब बात पुनः बोलते हैं। वे ही चक्षु, कर्ण आदि आध्यात्मिक इन्द्रियाँ हैं, वे ही प्राण उपलक्षित आधिदैविक सूर्य, चन्द्र, विद्युत आदि हैं, वे ही स्वजन बान्धव शब्द द्वारा उपलक्षित आधिभौतिक वस्तु समूह हैं। अर्थात् यह जगत महाप्राण प्रणवस्पन्दन से उद्भूत हुआ है। जो कुछ स्थूल पदार्थ नयनगोचर होता है, वह सब इस प्रणवस्पन्दन की स्थूल अवस्था है। सूक्ष्म रूप में स्पन्दन और उसका आधार चिदाकाश सर्वत्र ही विराजमान हैं। इसलिए सभी गुरु हैं, यह बात उन्होंने कही है)॥१०२॥

आजन्मकोट्यां देवेशि जपव्रततपः क्रियाः।
तासां सर्वफलं देवि गुरुसन्तोषमात्रतः॥१०३॥

अन्वय – देवि (हे देवि) देवेशि (हे देवेशि) आजन्मकोट्याम् (कोटिजन्म कृत) जपव्रततपः क्रियाः (जप, व्रत, तपस्या और पूजा)

तासाम् (उन सबका) सर्व फलम् (सम्पूर्ण फल) गुरुसन्तोष मात्रत: (गुरु सन्तोष मात्र से ही) (लभते) प्राप्त करता है॥१०३॥

अर्थ – हे देवि! हे देवेशि! (देवियों में श्रेष्ठ, मुझसे कथित तत्व पूर्णतया समझने की शक्ति तुम में है) कोटि जन्म कृत जप, व्रत, तपस्या, पूजा आदि का सब फल गुरु के सन्तोष से ही गुरुसेवी लाभ करता है॥१०३॥

इस जन्म में किया हुआ जप, व्रत, तपस्या, पूजा आदि तो तुच्छ बात है, कोटि जन्म कृत जप व्रतादि का फल मात्र गुरु के सन्तुष्ट होने से ही शिष्य लाभ करता है। इससे यह कहा गया कि जिस कर्म से गुरु सन्तुष्ट होते हैं अनन्यकर्मा होकर उसी कर्म का अनुष्ठान करना गुरुभक्त शिष्य मात्र का ही कर्तव्य है॥१०३॥

विद्याधनमदेनैव मन्दभाग्याश्च ये नराः।
गुरोः सेवां न कुर्वन्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥१०४॥

अन्वय – च (और) ये (जो) नराः (मानवगण) मन्दभाग्याः (मन्द भाग्य है) ते एवं (वे ही लोग) विद्याधनमदेन (विद्या और धन के गर्व से) गुरोः सेवाम् (गुरु सेवा) न कुर्वन्ति (नहीं करते हैं) (यह बात) अहम् (मैं) सत्यम् (सत्य) वदामि (कहता हूँ)॥१०४॥

अर्थ – और जो मानवगण मन्दभाग्य होते हैं वे ही लोग विद्या और धन के गर्व के कारण गुरु सेवा नहीं करते हैं यह मैं सत्य कहता हूँ॥१०४॥

(गुरुदेव निकट रहने से उनकी सेवा और अन्यत्र रहने से अपने अपने अधिकार के अनुसार उनका स्मरण, ध्यान, पूजा आदि

और उनकी कृपा से प्राप्त नाद, बिन्दु, कला, अध्यात्म-स्वरूप निर्गुण ध्यान ही गुरु सेवा है।

परममंगलानन्तदिव्यज्योतिभिर्ज्वलन्तमनिशं वाचामगोचर-मनन्ततेजोराश्यन्तर्गतमर्द्धमात्रात्मकं तूर्यं ध्वन्यात्मकं तुरियातीतमवाच्यं नादविन्दुकलाध्यात्मस्वरूपं चेत्याद्यनन्ताकारेणास्थितं निर्गुणं निष्क्रियं निर्मलं निरवद्यं निरंजनं निराकारं निराश्रयं निरतिशयं अद्वैतं परमानन्दलक्षणमादिनारायणं ध्यायेदिति।।

– त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषद् सप्तम अध्याय।

परम मंगल, अनन्तदिव्यतेज द्वारा सतत समुज्ज्वल, वाक्य का अगोचर अनन्त तेजो राशि के अन्तर्गत अर्धमात्रात्म, तूर्य, ध्वन्यात्मकनाद, तुरियातीत, अवाच्य, नाद, बिन्दु, कला, अध्यात्मस्वरूप इत्यादि अनन्त आकार में अवस्थित, निर्गुण, निष्क्रिय, निर्मल, निरवद्य, निरंजन, निराकार, निराश्रय, निरतिशय, अद्वैत, परमानन्द लक्षण आदि नारायण का ध्यान करे।।१०४।।

गुरुसेवा परं तीर्थमन्यत्तीर्थमनर्थकम्।
सर्वतीर्थाश्रयं देवि सद्गुरोश्चरणाम्बुजम्।।१०५।।

अन्वय – देवी (हे देवि) गुरु सेवा (गुरु सेवा) परम् (श्रेष्ठ) तीर्थम् (तीर्थ) अन्यत् (अन्य) तीर्थम् (तीर्थ) अनर्थकम् (अनर्थक) सद्गुरोः (सगुण) निर्गुण ब्रह्मवित् गुरु का (पदाम्बुजम्) (चरण कमल) सर्वतीर्थाश्रयम् (सब तीर्थों का आश्रयस्वरूप)।।१०५।।

अर्थ – हे देवी! गुरु सेवा श्रेष्ठ तीर्थ है, अन्य तीर्थ वृथा है। सगुण निर्गुण ब्रह्मविद् गुरु का चरण कमल सब तीर्थों का

आश्रय स्वरूप है अर्थात सब तीर्थ ही सद्गुरु के चरण कमल में आश्रय लिए हुए हैं॥१०५॥

इदं रहस्यं नो वाच्यं तवाग्रे कथितं मया।
सुगोप्यं च प्रयत्नेन येनात्मानं प्रयास्यसि॥१०६॥

अन्वय – मया (मेरे द्वारा) तवाग्रे (तुम्हारे निकट) कथितम् (कथित) इदम् (यह) रहस्यम् (गोपनीय तत्व) नो वाच्यम् (बोलना मत) च (और) प्रयत्नेन (प्रयत्न से) सुगोप्यम् (अच्छी तरह छिपाकर रखोगी) येन (जिसके द्वारा) आत्मानम (परमात्मा के) प्रयास्यसि (लाभ करोगी)॥१०६॥

अर्थ – मेरे द्वारा तुम्हारे निकट कथित यह गोपनीय तत्व अनुचित स्थान में मत कहना, प्रयत्नपूर्वक इसे गोपन रखना; इसके द्वारा तुम परमात्मा लाभ में समर्थ होगी॥१०६॥

षडानन-गणेशादि-वैष्णवानां च पार्वति।
मनसापि न वक्तव्यं मम सान्निध्यकारकम्॥१०७॥

अन्वय – पार्वति (हे पार्वती) षडानन (कार्तिकेय) गणेशादि (गणेश एवं) वैष्णवानाम् (वैष्णवों का) च (भी) (निकट) मम (मेरा) सान्निध्यकारकम् (सामीप्यकारक तत्व) मनसा (मन द्वारा) अपि (भी) न वक्तव्यम् (मत कहना)॥१०७॥

अर्थ – हे पार्वति, अपात्र होने पर कार्तिकेय, गणेश एवं वैष्णवों को भी मेरा सामिप्यकारक गुरुतत्व मन के द्वारा भी मत कहना॥१०७॥

तुम पर्वतराजकन्या हो, तुम इसे गोपन रखने में समर्थ होगी,

ऐसा मेरा विश्वास है। पिता का गुण अचलत्व तुम में है, यही "पार्वति" सम्बोधन का उद्देश्य है। लेकिन गुरु तत्व किसे कहा जायेगा, इसके उत्तर में कहते हैं)॥१०७॥

अतीव चित्त शान्ते च श्रद्धाभक्तिसमन्विते।
प्रवक्तव्यमिदं देवी ममात्मासि सदाप्रिये॥१०८॥

अन्वय – सदाप्रिये (हे सदा प्रीति पात्रि) देवि (हे देवि) (तुम) मम (मेरा) आत्मा असि (हो), अतीव चित्तशान्ते (अत्यन्त शान्तचित्त) च (और) श्रद्धाभक्तिसमन्विते (श्रद्धाभक्ति युक्त को) इदम् (यह) प्रवक्तव्यम् (कहना)॥१०८॥

अर्थ – हे देवि! हे प्रिये! तुम मेरा आत्मा हो, अतिशान्तचित्त और श्रद्धाभक्तियुक्त व्यक्ति को यह कहना॥१०८॥

(तुम मेरी प्रीतिपात्री सुपात्री हो, इसलिए तुम्हारे निकट गुरुतत्व मैंने कहा, तुम भी सुपात्र ही को यह कहोगी)॥१०८॥

अभक्ते वंचके धूर्ते पाषण्डे नास्तिके नरे।
मनसापि न वक्तव्यं गुरुगीताभिधं॥१०९॥

अन्वय – प्रिये (हे प्रिये) अभक्ते (अभक्त) वंचके (वंचक) धूर्ते (धूर्त) पाषण्डे (पाखण्ड) नास्तिके (नास्तिक) नरे (मानव को) गुरुगीताभिधम् (गुरुगीता नामक गोपनीय तत्व) मनसा (मन के द्वारा) अपि (भी) न वक्तव्यम् (मत कहना)॥१०९॥

अर्थ – हे प्रिये, अभक्त, वंचक, धूर्त, पाखण्डी और नास्तिक मनुष्य को यह गुरुगीता नामक गोपनीय तत्व मन के द्वारा भी मत कहना॥१०९॥

वन्देऽहं सच्चिदानन्दं भेदातीतं श्रीमद्गुरूम्।
आगमो निगमश्चापि निर्वाणश्च त्रिधागम्।
तस्मादुद्धृत्य देवेशि गुरुगीता मयोदिता।।११०।।

अन्वय – अहम् (मैं) सच्चिदानन्दम् (नित्यज्ञान आनन्दघन) भेदातीतम् (विकसन रहित) श्रीमद् (सुन्दर, प्रेममय) गुरुम् (पर ओंकार गुरु की) वन्दे (वन्दना करता हूँ)। देवेशि (हे देवेशि) आगमः (आगम) च और निगमः (निगम) अपि (एवं निर्वाणः निर्वाण) आगमः (आगम) (ये) त्रिधा (तीन प्रकार का) तस्मात् (उससे) उद्धृत्य (उद्धृत करके) मया (मेरे द्वारा) गुरुगीता (गुरुगीता) उदिता (कही गई)।।११०।।

अर्थ – मैं नित्यज्ञान आनंदघन, विकसनरहित, निर्गुण, सुन्दर, प्रेममय, ओंकार-गुरु की वन्दना करता हूँ। हे देवेशि, तीन प्रकार का जो आगम है अर्थात् आगम्, निगम, निर्वाण – उससे उद्धृत करके मैंने तुम्हें यह गुरुगीता बताई। अर्थात यह आगम आदि का सार है।।११०।।

("आग" तं शिवक्त्रेभ्यो "गतंच गिरिजाश्रुता" "म" तंच वासुदेवस्य तस्मादागमुच्यते। – शिव कहते हैं, गिरिजा श्रवण करती हैं और वासुदेव समर्थन करते हैं इस प्रकार आगत – "आंगत" "ग" मत-"म" इन तीन अक्षरों से आगम शब्द बना है।)

निर्गतं गिरजावक्त्राद् गतंच गिरिशश्रुतौ मतंच वासुदेवस्य निगमः परिकथ्यते – गिरिजा के मुख से निःसृत, महादेव श्रोता और वासुदेव समर्थित को निगम कहा जाता है। वेद का नाम भी निगम है।

निर्वाण है मोक्ष और ब्रह्मतत्व ज्ञापक तन्त्रशास्त्र विशेष।।११०।।

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
दुर्लभोऽयं गुरुर्देवि शिष्यसन्तापहारकः।।१११।।

अन्वय – देवी (हे देवि) शिष्यवित्तापहारका: (शिष्य का धन हरणकारी) बहव: (अनेक) (गुरुगण) सन्ति (हैं) शिष्यसन्तापहारक: (शिष्य का सन्ताप नाशक) अयम् (इस प्रकार का) गुरु: (गुरु) दुर्लभ (दुर्लभ)

अर्थ – हे देवी, शिष्य का धन हरणकारी अनेक गुरु हैं लेकिन शिष्य का सन्ताप नाशक इस प्रकार का गुरु दुर्लभ हैं।।१११।।

(जन्म-जन्मान्तर की समस्या नहीं रहने से त्रिताप को ताप वैसा बोध नहीं होता है और उसकी अत्यन्त निवृत्ति के लिए कामना भी नहीं होती है। आजकल अधिकांश स्थान में मनुष्य पारलौकिक सुख के लिए नहीं बल्कि ऐहिक सुख के लिए ही गुरु का आश्रय करता है एवं उसे ही पाता है। इस युग में मात्र सन्तापहारक गुरु ही दुर्लभ हैं नहीं, बल्कि वास्तविक सन्तप्त शिष्य भी दुर्लभ हैं)।।१११।।

संसारसागरसमुद्धरणैकमन्त्रं
ब्रह्मादिदेवमुनिपूजितसिद्धमन्त्रम्।
दारिद्र्यदुःखभयशोकविनाशमन्त्रं
वन्दे महाभयहरं गुरुराजमन्त्रम्।।११२।।

अन्वय – संसारसागरसमुद्धरणैकमन्त्रम् (संसार सागर से उत्तम रूप से उद्धार का एक मात्र मन्त्र) ब्रह्मादिदेवमुनिपूजितसिद्धमन्त्रम् (ब्रह्मादि देवता और मुनिगण पूजित सिद्ध मंत्र) दारिद्र्यदु:ख

भयशोकविनाशमन्त्रम् (दारिद्र्य, दु:ख भय शोक विनाश करने का मंत्र) महाभयहरम् (मृत्युभयनाशक) गुरुराज मन्त्रम् (गुरु इस मन्त्रराज की) वन्दे (वन्दना करता हूँ)॥११२॥

अर्थ – संसार सागर से उत्तम रूप से उद्धार करने में समर्थ एक मात्र मंत्र, ब्रह्मादि देवता और मुनिगण द्वारा पूजित सिद्ध मन्त्र, दारिद्र्य, दु:ख, भय, शोक के विनाश का मंत्र, मृत्यु भय नाशक मन्त्र गुरु इस मन्त्रराज की वन्दना करता हूँ॥११२॥

ॐ तत् सत् ॐ॥२॥

इति विश्वसारतन्त्रे ओमगुरुगीता स्तोत्रं समाप्तम्

□□□□